लज्जा-हरण

लज्जाहरण

लज्जा-हरण

विमल मित्र

बिमल मित्र

कहानी लिखने बैठते ही, पहले मैं कहानी का अन्त सोच लेता हूं।

जब तक मैं अन्त नहीं सोच लेता, मेरे लिए कहानी लिखना मुश्किल हो जाता है। सोचते-सोचते जब मैं कहानी के अन्त तक पहुंच जाता हूं, यानी जहां मैं परिणति के शेष बिन्दु से टकराता हूं, वहां से उल्टे पांव वापस लौटना शुरू करता हूं। ऐसे ही, पीछे चलते-चलते जब बिल्कुल शुरुआत में आ पहुंचता हूं, तब जाकर लिखने की नौबत आती है।

लेकिन इस तरह स्थिति और जटिल हो आती है।

कहानी जहां खत्म होती है, यानी जहां सारे चरित्र अपनी चरम परिणति पर जा पहुंचते हैं, उस समापन के बारे में अगर पहले से ही बता दिया जाए तो मुमकिन है कि पाठकों को अच्छा न लगे। और जो बात किसीको अच्छी न लगे उसको लिखने से कोई फायदा नहीं है। पाठक और लेखक के पारस्परिक सहयोग में ही लेखन की सार्थकता है।

खैर, कहानी लिखते हुए ये चर्चाएं बिल्कुल अवान्तर हैं, लेकिन फिर भी मैं यह सब लिखने को विवश हूं।

इसकी वजह है मेरा दोस्त—तापस!

इस तापस को लेकर वाकई कोई कहानी लिखी जाए या नहीं, यही मेरी असली समस्या है; क्योंकि कहानी जहां खत्म होगी, उसपर क्या कोई विश्वास कर पाएगा?

विश्वास-अविश्वास का प्रश्न तो खैर है ही, इसके अलावा सम्भव-असम्भव का सवाल भी उठता है। यह सवाल जितना पाठकों की तरफ से उठता है, उतना ही लेखक की तरफ से भी।

मैंने तापस से बहुत बार कहा है, "तुम शराब छोड़ दो तापस, यह जहर तुम्हारी जान ले लेगा।"

तापस ने जवाब दिया है, "देख, तू अगर भात खाने से मना क
मान जाऊंगा, लेकिन शराब! बस, यही मैं नहीं छोड़ सकता,
बिरादर!"

गज़ब है! यूं मैं सैकड़ों लोगों को शराब पीते देख चुका हूं। ऐसे भी लोग देखे हैं जो शराब के नशे में धुत होकर सड़कों पर उल्टे पड़े रहते हैं। बहुत-से लोगों को शराब मिलाकर भात खाते भी देख चुका हूं। एक हाथ में शराब का गिलास और दूसरे हाथ में भात का कौर! ऐसे भी लोग हैं, शराब के बिना जिनका खाना तक हजम नहीं हो पाता।

यह सब मैं बचपन से ही देखता आ रहा हूं। लेकिन सच तो यह है कि इनके प्रति मुझे कभी किसी तरह की घृणा या संकोच नहीं हुआ। ऐसे सैकड़ों लोगों से मेरी जान-पहचान है, उनसे मेरी परम घनिष्ठता और प्यार का रिश्ता है। अगर मैं उनसे दो-एक दिन भी न मिलूं, तो मन कहीं से बेहद खाली-खाली लगता है।

लेकिन तापस की तो बात ही निराली है।

एक दिन मैंने ही पूछा था, "यह शराब पीना तुझे किसने सिखाया?" तापस ने हंसकर जवाब दिया, "यह भी भला कोई सीखने की चीज़ है? ऐसे ही एक दिन चखकर देखी थी। उस दिन रात को बढ़िया नींद आई। बस, अगले दिन फिर चढ़ा ली, उसके अगले दिन फिर..."

"उसके बाद...?"

"उसके बाद तो मुझे देख ही रहा है।"

"लेकिन तेरी ही तरह और लोगों ने भी तो पीना शुरू किया था, फिर भला तू ही उन सबको पछाड़कर आगे कैसे निकल गया?"

तापस को जब शराब की लत नहीं लगी थी, वह बिल्कुल सहज स्वाभाविक और निश्छल-सरल इन्सान था। उस जैसा इन्सान मिल[ना] मुश्किल था। हम सब उसके अति सरल स्वभाव की वजह से ही उ[से] प्यार करते थे। मेरे यहां वह अक्सर पढ़ने के लिए आया करता थ[ा] कभी गणित, कभी अंग्रेजी, कभी हिस्ट्री। दरअसल वह सब वि

मे कच्चा था। खैर, लिखने-पढ़ने में उसके कमज़ोर रह जाने की खास वजह भी थी।

मैंने दुनिया में यह अजीब दस्तूर देखा है कि जिस घर पर दरिद्रता की छाया पड़ी हो, वहां मानो हर मामले में ही अकाल छा जाता है। वहां बुद्धि की दरिद्रता भी मानो अपरिहार्य स्थिति की तरह स्पष्ट हो उठती है। दरिद्रता का यही सबसे बड़ा अभिशाप है।

इसीलिए, मैंने देखा है, जो गरीब हैं, वह चाहकर भी शरीफ नहीं बन पाते। कोई इन्हें शरीफ बनने ही नही देता, क्योंकि अगर वे सच-मुच शरीफ बन गए तो उन्हें रुपयों के मोल पर खरीदने में असुविधा होगी। दरअसल अमीरों की सारी समस्या सिर्फ उन्हीं लोगों को लेकर है जो सचमुच शरीफ हैं। उनकी सबसे बड़ी परेशानी यही है कि वे लोग ऐसे लोगों से कोई बुरा काम नहीं करवा पाते।

तापस को पढ़ाते हुए अक्सर मेरा भी दिमाग गर्म हो जाता था, "तुझसे कुछ नहीं होगा, तापस! तेरे सिर में सांड़ का गोबर भरा हुआ है।"

वैसे मेरी नाराजगी की खास वजह भी थी। कोई सहज-सी बात आखिर कितनी बार समझाई जा सकती है? इन्सान के धीरज की भी तो एक सीमा होती है।

लेकिन तापस ने मेरी नाराजगी का कभी बुरा नहीं माना। शायद उसे खुद भी अपनी बुद्धि पर भरोसा नहीं था, इसीलिए वह मेरी बात से एकबारगी सहमत हो जाता था, मैं जो-जो कहता था, वह सिर झुकाकर चुपचाप सुन लेता था।

कभी-कभार एकाध जवाब भी दे देता था, "देख, यार, तू मुझे इतना डांटा मत कर! अरे, सबकी बुद्धि क्या एक बराबर होती है?"

"तब तू लिखना-पढ़ना छोड़ दे···"

इससे अधिक कुछ कहने का कभी साहस नहीं हुआ। अगर कहीं मेरी बातें सुनकर वह भाय-भांय रोने लगे! बस इसी डर से ज्यादा कुछ कहने की कभी हिम्मत नहीं पड़ी।

वैसे उसे डाटने-डपटने के बाद खुद मुझे भी बेहद तकलीफ होती थी।

मुझे हर वार अफसोस होता था कि उसे मैंने इतना बुरा-भला क्यों कह डाला । आखिर उसका क्या कसूर ? हर कोई अगर तेज बुद्धिवाला होता, तो फिर कहना ही क्या था । अगर ऐसा सम्भव होता तो दुनिया के वड़े-छोटे लोगों में कहीं कोई अन्तर ही नहीं होता । हर आदमी अगर एक जैसा होता तो यह संसार युद्ध का अखाड़ा वन जाता । हर कोई यही चाहता कि वह राजा वन जाए । उस वक्त प्रजा वनने के लिए कोई तैयार नहीं होता ।

हालांकि ये सब आजकल की वातें नहीं हैं । आज के ज़माने में तो ये सब सोचना भी अन्याय है । मेरी भी यही राय है । वर्तमान समाज-तन्त्र और साम्यवाद के युग में छोटे-वड़े सभी लोगों को समदृष्टि से देखना ही उचित है । लेकिन उन दिनों ये वातें मेरी बुद्धि के वाहर थीं ।

वैसे ये वातें मुझे किसीने सिखाई भी नहीं । उन दिनों हम सिर्फ इतना ही जानते थे—'पढ़ोगे-लिखोगे तो होगे नवाव ।' अपने अभि-भावकों की तरह हम भी यह कविता दोहराया करते थे । लेकिन यह कितना वड़ा झूठ है—इस सच को जितने मर्मान्तक भाव से मैंने इस उम्र में आकर जाना है, उतना पहले कभी जान पाना नामुमकिन था ।

खैर, उन दिनों तो खुद तापस का भी यही ख्याल था कि वह सभी लोगों से छोटा है । लेकिन अपने छोटे होने के अगौरव को अहंकार का मुखौटा पहनाकर उसने कभी कहीं नहले पर दहला जड़ने की कोशिश नहीं की । उसने समझ लिया था कि उसने इस दुनिया में छोटा होकर ही जन्म लिया है, अतः अव उसे जिन्दगी-भर छोटेपन का अगौरव ढोते हुए ही जीना होगा । उसके लिए अन्य कोई गति भी नहीं है । अपनी क्षुद्रता को लेकर वह कभी परेशान भी नहीं हुआ । उसका यही गुण उसके व्यक्तित्व की सवसे वड़ी खासियत वन गया था ।

लेकिन कमाल है ! एक दिन वही तापस इतना वड़ा आदमी व गया । उसके पास इतना पैसा हो गया कि वह हम सवको पछाड़क आगे निकल गया । जिस आदमी को हम लोगों ने हमेशा सवसे छो माना, हठात् वह एक दिन हम सवको यूं मात दे जाएगा, इसकी ह लोगों ने कभी कल्पना भी नहीं की थी ।

इसीलिए सोचता हूं, इतना बड़ा होना भी शायद अच्छा नहीं होता। छोटे होने के अगौरव से बड़े होने की गौरवहीनता कितनी अधिक मर्मान्तिक है, उन दिनों शायद मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था।

लेकिन ये सब बातें बाद में होती रहेंगी। पहले शुरू की ही बात कहूं—

यही तापस एक दिन बिल्कुल अचानक हम सबके बीच से लापता हो गया।

बंधा-बंधाया आश्रय छोड़कर लापता हो जाने के पीछे चाहे जितनी भी बड़ी हताशा क्यों न रही हो, उससे भी बड़ी बात, जो मन को चुभ गई—वह था दुस्साहस। यूं जानबूझकर अनिश्चितता के समुद्र में आखिर कौन छलांग लगा सकता है? ऐसा कौन है, जो यूं निराश्रित होकर अपने को निःशेष करने को तैयार हो जाएगा?

शुरू-शुरू में हम लोगों ने इस बारे में काफी जांच-पड़ताल की। साधारण तौर पर तापस के मां-बाप, भाई-बहन भी थोड़ा-बहुत इधर-उधर पता लगाते रहे। वैसे हम सबका यही ख्याल था कि एक न एक दिन वह जरूर लौट आएगा। लौटना ही होगा। बाकी सब निकम्मे लोग जो करते हैं, यही तापस भी करेगा। अभी वह झोंक में आकर चला गया है, लेकिन ठोकर खाकर एक न एक दिन उसे लौटना ही होगा। और लोगों की बात अलग है! वे लोग चाहे जैसे भी हों, किसी न किसी हिल्ले में लग ही जाते हैं और इस कोशिश में या तो वे पैर जमाकर खड़े हो जाते हैं या फिर बिल्कुल ही डूब जाते हैं। लेकिन तापस उस किस्म का इन्सान ही नहीं था। वह बेहद अव्यावहारिक, आलसी और कच्ची बुद्धिवाला इन्सान था। उस जैसा आदमी क्या बाहर जाकर कहीं टिक सकता था?

उन दिनों हम सभी की यही राय थी। हम लोगों का ख्याल था कि वह एक न एक दिन जरूर लौट आएगा और उसी तरह ठोकरें खाकर घूमता फिरेगा। हम लोग उसपर दुबारा रौब जमाएंगे। नजदीक आने के लिए वह फिर हमारे इर्द-गिर्द चक्कर लगाया करेगा।

लेकिन उस दिन के बाद आने कितना पानी

ला, जाने कितना समय महासमय से मिलकर एकाकार हो उठा, लेकिन तापस लौटकर नहीं आया। हम लोग तापस को लगभग भूल ही चुके थे। वैसे भी हमें क्या गरज पड़ी थी कि हम हर किसीको याद रखते फिरें? किसीके होने न होने से क्या फर्क पड़ता है?

आज इस व्यस्तता के युग में सिर्फ एक ही सम्बन्ध असली है, जरूरत का सम्बन्ध! जरूरत ही हमें एक-दूसरे के करीब खींच लाती है और जरूरत खत्म होते ही हम एक-दूसरे को दूर धकेल देते हैं।

लेकिन प्रीति! प्रेम! मुहब्बत! स्नेह! ममता!

ये तमाम शब्द महज डिक्शनरी तक ही सीमित हैं। व्यावहारिक जगत में शायद अब इनका कोई अस्तित्व नहीं है। आजकल चारों तरफ प्रतिस्पर्धा की वेहिसाव धूम है। हम सबमें कौन किसको कुहनियांकर आगे निकल जाने में कामयाब होता है, वस, हम इसी अफरा-तफरी में दौड़ रहे हैं।

खैर, ये सब वातें इतनी वार दुहराई जा चुकी हैं कि मैं नये सिरे से कुछ न भी कहूं तो भी चलेगा, क्योंकि इन सबसे फायदा कोई नहीं होता। एक तरफ शान्ति पर लम्बे-लम्बे भाषण, दूसरी तरफ खूना-खूनी! इन दोनों के बीच कभी कोई समझौता नहीं हो सकता, इसीलिए ये वातें मेरी जुबान से वरवस निकल गईं।

लेकिन हमारा जीवन तव भी चलता रहेगा। दरअसल जिन्दगी कभी नहीं रुकती, इसीलिए हम चलते रहने को विवश हैं। शायद इसी-लिए तापस भी निरुद्देश्य के अथाह सागर में एक दिन गुम होकर भी निरन्तर आगे···और आगे बढ़ता गया। वैसे भी, कौन किसीके बारे में बेकार का सिर-दर्द मोल लेता है? लेकिन जिस वक्त हम सब जीवन से जूझते हुए क्लान्त-क्षुब्ध और क्षत-विक्षत होकर कराह रहे थे, ठीक उन्हीं दिनों तापस से मेरी दुवारा मुठभेड़ हो गई।

मैं तो तापस को पहचान ही नहीं पाया। तापस भी मुझे नहीं पहचान सका।

मैं बम्बई जा रहा था। कम्पार्टमेन्ट के एक वर्थ पर अपना साम[illegible] लगाकर, मैं इत्मीनान से बैठ गया। अन्य तीन यात्रियों में से अभी

कोई नहीं पहुंचा था। वे लोग भी मेरे ही सहयात्री थे। बाहर दरवा
पर तमाम यात्रियों के नामों की चिट झूल रही थी। मैंने उसपर
नजर डालने की जरूरत नहीं महसूस की।

मैंने रात का खाना-पीना निवटाकर ही ट्रेन पकड़ी थी। मेरा इरा
था, ट्रेन पर सवार होते ही मैं लम्बी तान लूंगा। रात को सोऊंगा
सुबह ही आंख खोलूंगा।

कलकत्ता महानगर में रहते हुए मेरी नींद में सैकड़ों व्याघात पड़
हैं। रात में भी सोने में काफी देर हो जाती है और सवेरे भी मुंह-अंधेरे
उठना पड़ता है। अतिशय काम की वजह से बिल्कुल सुबह-सुबह उ
जाता हूं। प्रतिस्पर्धा के इस जमाने में यह कम्बख्त नींद भी हमारे लि
महज उपद्रव-भर है। अगर नींद की जरूरत न होती तो बहुत सारा का
निपट जाता।

वर्तमान युग ने हमारे लिए जैसे विलास-व्यसन के सामान जुटा
हैं वैसे ही हमारी जिन्दगी भी हमें निचोड़कर, एकबारगी निःशेष कर दे
पर आमादा रहती है। जब तक वह हमारे टुकड़े-टुकड़े नहीं कर डालेग
हमारा पीछा नहीं छोड़ेगी।

कुछ देर में बाकी तीनों मुसाफिर भी आ पहुंचे। अजीबोगरी
चेहरे। अलग-अलग पहनावे। सब अपनी-अपनी सीट पर सामान लगा
कर इत्मीनान से बैठ गए। किसीको किसीसे वार्तालाप की जरूरत नहं
पड़ी। लेकिन उनमें से एक व्यक्ति ने अपना सामान जैसे-तैसे रखक
मेरी ओर देखते हुए कहा, "आपसे एक अनुरोध कर सकता हूं?"

"कहिए!"

मेरा ख्याल था शायद ये सज्जन बीमारी का बहाना बनाकर मुझ
ऊपरवाले फर्श पर जाने का आग्रह करेंगे। क्योंकि दुनिया में कम-अक्ल
की सचमुच कोई कमी नहीं है। पिछले दिनों मुझे इसका अच्छा-खास
अनुभव हो चुका था।

लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। वे साहब इतने अविवेकी नहीं
थे। उन्होंने कहा, "मैं जरा डाइनिंग कार की तरफ जा रहा था। आप
भी चलेंगे?"

मिला, जाने कितना समय महासमय से मिलकर एकाकार हो उठा, लेकिन तापस लौटकर नहीं आया। हम लोग तापस को लगभग भूल ही चुके थे। वैसे भी हमें क्या गरज पड़ी थी कि हम हर किसीको याद रखते फिरें? किसीके होने न होने से क्या फर्क पड़ता है?

आज इस व्यस्तता के युग में सिर्फ एक ही सम्बन्ध असली है, ज़रूरत का सम्बन्ध! ज़रूरत ही हमें एक-दूसरे के करीब खींच लाती है और ज़रूरत खत्म होते ही हम एक-दूसरे को दूर धकेल देते हैं।

लेकिन प्रीति! प्रेम! मुहब्बत! स्नेह! ममता!

ये तमाम शब्द महज़ डिक्शनरी तक ही सीमित हैं। व्यावहारिक जगत में शायद अब इनका कोई अस्तित्व नहीं है। आजकल चारों तरफ प्रतिस्पर्धा की बेहिसाब धूम है। हम सबमें कौन किसको कुहनियांकर आगे निकल जाने में कामयाब होता है, बस, हम इसी अफरा-तफरी में दौड़ रहे हैं।

खैर, ये सब बातें इतनी बार दुहराई जा चुकी हैं कि मैं नये सिरे से कुछ न भी कहूं तो भी चलेगा, क्योंकि इन सबसे फायदा कोई नहीं होता। एक तरफ शान्ति पर लम्बे-लम्बे भाषण, दूसरी तरफ खूना-खूनी! इन दोनों के बीच कभी कोई समझौता नहीं हो सकता, इसीलिए ये बातें मेरी ज़ुबान से बरबस निकल गईं।

लेकिन हमारा जीवन तब भी चलता रहेगा। दरअसल ज़िन्द कभी नहीं रुकती, इसीलिए हम चलते रहने को विवश हैं। शायद इस लिए तापस भी निरुद्देश्य के अथाह सागर में एक दिन गुम होकर निरन्तर आगे…और आगे बढ़ता गया। वैसे भी, कौन किसीके बा बेकार का सिर-दर्द मोल लेता है? लेकिन जिस वक्त हम सब जी से जूझते हुए क्लान्त-क्षुब्ध और क्षत-विक्षत होकर कराह रहे थे, उन्हीं दिनों तापस से मेरी दुबारा मुठभेड़ हो गई।

मैं तो तापस को पहचान ही नहीं पाया। तापस भी मु पहचान सका।

मैं बम्बई जा रहा था। कम्पार्टमेन्ट के एक बर्थ पर अपना लगाकर, मैं इत्मीनान से बैठ गया। अन्य तीन यात्रियों में से

कोई नहीं पहुंचा था। वे लोग भी मेरे ही सहयात्री थे। बाहर दरवाजे पर तमाम यात्रियों के नामों की चिट झूल रही थी। मैंने उसपर भी नजर डालने की जरूरत नहीं महसूस की।

मैंने रात का खाना-पीना निवटाकर ही ट्रेन पकड़ी थी। मेरा इरादा था, ट्रेन पर सवार होते ही मैं लम्बी तान लूंगा। रात को सोऊंगा [illegible] सुबह ही आंख खोलूंगा।

कलकत्ता महानगर में रहते हुए मेरी नींद में सैकड़ों [illegible] हैं। रात में भी सोने में काफी देर हो जाती है और सबेरे भी [illegible] उठना पड़ता है। अतिशय काम की वजह से बिल्कुल [illegible] जाता हूं। प्रतिस्पर्धा के इस जमाने में यह कम्बख्त नींद भी [illegible] महज उपद्रव-भर है। अगर नींद की जरूरत न होती तो [illegible] निपट जाता।

वर्तमान युग ने हमारे लिए जैसे विलास-व्यसन के [illegible] हैं वैसे ही हमारी जिन्दगी भी हमें निचोड़कर, एक [illegible] पर आमादा रहती है। जब तक वह हमारे टुकड़े-टुकड़े [illegible] हमारा पीछा नहीं छोड़ेगी।

कुछ देर में बाकी तीनों मुसाफिर भी [illegible] चेहरे। अलग-अलग पहनावे। सब अपनी-[illegible] कर इत्मीनान से बैठ गए। किसीको किसीसे [illegible] पड़ी। लेकिन उनमें से एक व्यक्ति ने [illegible] मेरी ओर देखते हुए कहा, "आपसे एक [illegible]

"कहिए!"

मेरा ख्याल था शायद ये सज्जन [illegible] ऊपरवाले बर्थ पर जाने का आग्रह करें। [illegible] की सचमुच कोई कमी नहीं है। [illegible] अनुभव हो चुका था।

लेकिन ऐसा कुछ भी नहीं [illegible] थे। उन्होंने कहा, "मैं जरा डाइनिंग [illegible] भी चलेंगे?"

"जी नहीं । मैंने घर पर ही डिनर ले लिया था…"

उनकी सवालिया निगाह अन्य यात्रियों की तरफ मुड़ गई । उन्होंने उनसे भी वही सवाल किया। लेकिन कोई भी डाइनिंग कार की तरफ जाने को राजी नहीं हुआ। आखिर हारकर मेरी तरफ दुबारा मुड़कर पूछा, "मैं ज़रा डाइनिंग कार तक जा रहा हूं। अगले स्टॉपेज पर लौट आऊंगा। मेहरबानी करके क्या आप दरवाज़ा खोल देंगे ?"

मैं पल-भर को दुविधा में पड़ गया। पूछा, "आपको क्या बहुत देर लगेगी ?"

"कुछ कह नहीं सकता। हो सकता है, थोड़ी-सी देर हो जाए।"

"मैं आखिर कर भी क्या सकता था ? मैंने सोचा था, ट्रेन में सवार होते ही लम्बी तानकर सोऊंगा, लेकिन अब यह नामुमकिन दीखता था। मैंने एक बार डिब्बे के अन्य यात्रियों की तरफ निगाह डाली। वे लोग निर्विकार थे। सभी लोग एक-दूसरे से अपरिचित थे। ऐसी स्थिति में किसीको भी शराफत निभाने की गरज़ नहीं थी। लेकिन साधारण शराफत भी तो कोई चीज़ होती है ? आजकल कोई उतना-सा भी नहीं निभाता। शायद इसीलिए चारों तरफ इतनी अशान्ति मची हुई है।

लेकिन मैं जिस युग की चर्चा कर रहा हूं, उन दिनों हम लोग इतने अमानुष नहीं हुए थे। उन दिनों चरित्र-बल नामक वस्तु का थोड़ा-बहुत नामोनिशान बच रहा था।

मैंने कहा, "कोई बात नहीं। आप हो आइए। मैं जागता रहूंगा।"

वे महोदय मुझे धन्यवाद देकर डिब्बे से नीचे उतर गए। मैंने सि हाने की बत्ती जला ली और अपने सामने एक किताब खोल ली।

अब तक कम्पार्टमेन्ट के अन्य दोनों यात्री खर्राटे भरने लगे उनकी तरफ गहरी निस्तब्धता छा गई। नींद तो मुझे भी आ रही पलकें बोझिल हो आई थीं। काश, मैं भी निश्चिन्त होकर सो पा

लेकिन कोई उपाय नहीं था। वे महाशय अगर लौटकर धड़ाम दरवाज़ा पीटते रहे और हम सब गहरी नींद में सो गए तो बत होगी। मुमकिन है, ट्रेन भी छूट जाए। अतः न चाहते हुए भी हुआ था।

काफी देर हो गई। अभी तक उनका कोई अता-पता नहीं था। मैंने अन्दाज लगाया, रात काफी जा चुकी है। घड़ी पर नज़र डाली। रात के साढ़े दस बज रहे थे। लेकिन इतनी देर तक तो डाईनिंग रूम भी खुला नहीं रहता। तब ?

खैर, काफी देर बाद वे लौट आए। दरवाजे पर हल्की-सी ठुक-ठुक होते ही मैंने उठकर दरवाजा खोल दिया। उन्होंने मुझे दुबारा धन्यवाद दिया और अपनी सीट पर जाकर लेट रहे। उन्होंने कोई बातचीत नहीं की। उस समय वे बातें करने लायक स्थिति में भी नहीं थे।

मुझे लगा, उनके मुंह से तेज़ ह्विस्की की गन्ध आ रही है।

मैं सोच में पड़ गया। डाईनिंग कार में तो शराब की बिक्री निषिद्ध हो चुकी है। फिर उनके लिए शराब किसने जुटाई ? इसके अलावा, अगर ये महाशय, हमारे डिब्बे में ही शराब चढ़ाने बैठ जाते तो इसमें हम लोगों को क्या आपत्ति हो सकती थी ?

खैर, उनकी मर्जी ! कहावत है न— जो खाए चीनी, जुटाए चिन्ता-मणि। अतः इसमें इतना परेशान होने की क्या बात है ?

मैंने भी बत्ती बुझाकर करवट बदली और गहरी नींद में सो गया। ट्रेन बेहद तेज गति से अपने गन्तव्य की ओर दौड़ती चली जा रही थी।

दुनिया में बहुत-से ऐसे लोग हैं जो खुद अपने को ही नहीं पहचानते। यह भी ध्रुव सत्य है कि जो लोग खुद अपने को ही नहीं पहचानते, उनके लिए दूसरों को पहचानना नामुमकिन है। तापस भी शायद उन्हीं लोगों में से था।

वह भी अपने को कभी नहीं पहचान पाया। हम लोगों ने सोचा था, वह चाहे जहां भी चला जाए, आदमी की पहचान कर पाना, उसके वश के बाहर की बात है।

लेकिन तापस को दोबारा देखकर मुझे पहली बार अहसास हुआ कि हम सब कितना गलत सोचते थे।

कई दिनों बाद तापस ने ही बात छेड़ी थी, अगर मैं घर से न
ला होता तो शायद यह सब सम्भव नहीं था। न मैं अपने को पहचान
ता, न औरों को।"

मैं उसकी बात सुनकर अवाक् रह गया। शायद कुछ लोग चिड़िया-
ुनमुन की तरह होते हैं। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने स्वयं तो कभी
घर-गृहस्थी नहीं बसाई लेकिन दुनिया के सम्बन्ध में जितनी जानकारी
उन्हें थी, क्या किसी घोर संसारी व्यक्ति के लिए सम्भव थी?

चिड़िया का बच्चा जब अंडे के भीतर रहता है, तब उसे चेतना तो रहती है, लेकिन वह अपने को पहचान नहीं पाता। अपनी सही पहचान उसे तब होती है, जब वह अंडे का छिलका फोड़कर बाहर निकलता है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस बहुत कम उम्र में अंडा फोड़कर बाहर निकल आए थे। दुनिया में ऐसे लोग ज्यादा होते हैं, जिन्हें अपने इर्द-गिर्द का आवरण तोड़ने में ही सारी उम्र बीत जाती है। लोग जो स्कूल-कालेज-विश्वविद्यालयों में पढ़ते-लिखते हैं—वह इसी आवरण को तोड़ने के लिए। लेकिन अक्सर ऐसा होता है कि विश्वविद्यालय की सीमा-रेखा लांघकर घर-परिवार, पुत्र-कलत्र से भरे-पूरे जीवन में वह फटा हुआ आवरण जैसे फिर से जुड़ जाता है। ऐसी स्थिति में मनुष्य अपने-आपको तो भूल ही जाता है, दूसरों के बारे में भी उसकी पहचान धुंधला जाती है।

आमतौर पर हम सभी लोगों के जीवन की यही ट्रेजेडी है। हम जैसे मामूली लोग अक्सर इसी ट्रेजेडी के साथ जन्म लेते हैं, और इसी ट्रेजेडी को झेलते हुए दम तोड़ देते हैं।

लेकिन मैंने एकमात्र तापस को ही इसका अपवाद देखा। कहना चाहिए कि वह अपने ढंग का पहला अपवाद था।

सुबह जब नींद खुली तो देखा, कम्पार्टमेंट के बाकी यात्री बहुत पहले ही जाग चुके हैं। सिर्फ एक महानुभाव उस वक्त भी गहरी नींद में खोए हुए थे। मेरा इशारा उन्हीं महानुभाव की ओर है जो पिछली रात डाइनिंग-कार की तरफ गए थे। वे अभी तक सो रहे थे।

ट्रेन यथारीति अपनी गति से आगे बढ़ती रही। बीच में जहां-ज

रखना निर्धारित था, रुक भी रही थी।

हम लोग अपनी-अपनी रुचि के अनुसार सुबह का नाश्ता निबटाकर निश्चिन्त हो चुके थे। उसके बाद हम लोगों के लिए कोई काम बाकी नहीं था। वैसे भी, आदमी को ट्रेन में आखिर काम भी क्या रहता है? बस, चुपचाप कोई किताब पढ़ना या टुकुर-टुकुर खिड़की से बाहर ताकना।

काफी देर बाद उन महाशय की नींद टूटी और वे अपनी बर्थ से नीचे उतर आए। नीचे उतरते ही वे दाढ़ी बनाने का सामान और तौलिया वगैरह लेकर सीधे बाथरूम में जा घुसे। बाथरूम से भी थोड़ी देर बाद यथारीति बाहर निकल आए। जब वे बाथरूम से बाहर निकले तो एकदम स्मार्ट साहब बन चुके थे।

वह मेरी बगल में आकर बैठ गए। मैंने अखबार तहाकर एक किनारे रख दिया। उन्होंने अखबार की तरफ देखते हुए मुझसे पूछा, "मैं आपका यह अखबार देख सकता हूं?"

मैंने सिर हिलाकर सहमति जता दी।

उन्होंने सरसरी निगाह से अखबार के सारे पन्ने उलट-पलट डाले और मुझे अखबार वापस करते हुए कहा, "कुछ खबर नहीं है..."

उसके बाद, जैसे कुछ करने को न हो, ऐसी हताश भंगिमा में वे चुपचाप बैठे रहे और ट्रेन के झोंकों के साथ झूलने लगे। हम सब बाकी तीनों यात्री अभी तक एक-दूसरे से अपरिचित थे। किसीकी आपस में जान-पहचान नहीं हुई थी। हालांकि कई घंटों से हम लोग एक ही कम्पार्टमेंट में सफर कर रहे थे और हमने एक ही जगह रात बिताई थी, फिर भी किसीने किसीसे कोई खास बातचीत नहीं की। वाकई यह बेहद अजीब स्थिति थी।

वैसे, कमोबेश सभी लोगों को, कभी न कभी ऐसी स्थिति का सामना करना पड़ा होगा। खासकर वे लोग, जो ट्रेन से अक्सर सफर करते हैं। हां, प्लेन में उतनी असुविधा नहीं होती; क्योंकि वहां तो पढ़ने के लिए विभिन्न भाषाओं की अनेकानेक पत्र-पत्रिकाओं, फिल्मी किताबों का इन्तज़ाम रहता है।

मेरी बगलवाले सज्जन से जैसे अब चुप नहीं रहा गया। उन्होंने मेरी तरफ देखते हुए अचानक सवाल किया, "आप कहां तक जाएंगे ?"

मैं समझ गया। इतनी देर से चुप बैठे-बैठे वे शायद ऊब ही उठे थे।

मैंने जवाब दिया, "बम्बई।"

मैं फिर चुप ही रहा। वैसे उचित यह था कि पलटकर मैं भी उनसे उनके गन्तव्य के बारे में सवाल करता; लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया।

उन्होंने ही बातों का सिलसिला कायम रखने की गरज से कहा, "मैं भी..."

बस, यहीं तक ! लेकिन उन्होंने तब भी पीछा नहीं छोड़ा। पूछा, "आप क्या कलकत्ते में ही रहते हैं ?"

"जी हां !"

उन्होंने दुबारा सवाल किया, "कलकत्ते शहर में या सबर्ब (बाहरी हिस्सा) में ?"

यानी ये जनाब यह जानने की कोशिश कर रहे थे कि मैं अमीर लक्ष्मीपति हूं या गरीब ! अब ये सब इशारे हर कोई समझने लगा है। मैंने नादान बनते हुए अपना पता-ठिकाना बता दिया।

मेरा उत्तर सुनते ही वे उछल पड़े। मानो मुझे पहचान लिया हो।

मैंने पूछा, "तुम तापस हो न ?"

"यानी, तूने मुझे पहचान लिया ?"

"तेरी तो बिलकुल कायापलट हो गई है ! पहले तो मैं तुझे पहचान ही नहीं पाया। इतने दिनों तक तू कहां था ? हम लोग तुझे खोजते-खोजते हैरान थे।"

मेरी निगाहें अपलक भाव से उसका चेहरा टटोलती रहीं। हां, वह तापस ही था—हम लोगों के साथ पढ़नेवाला, लेकिन प्रतियोगिता में हर बार मात खाकर हर पल सिर झुकाकर चलनेवाला। उसमें इतना रद्दोबदल आखिर कैसे सम्भव हो पाया ?

तापस का तौर-तरीका, कपड़ा-लत्ता, चाल-चलन—सब-कुछ जाने कैसा बदला-बदला-सा लग रहा था।

उसका सूटकेस, होल्डाल, विस्तर-तकिया, सिगरेट पीने का ढंग, माथे की लटें—सबकुछ कितना बदल गया था !

मेरी निगाहों में झांकता सवाल शायद उसने पढ़ लिया था। पूछा, "ऐसे क्या देख रहा है ?"

"तुझे···"

"हां-हां, देख ले ! मुझे अच्छी तरह देख ले ! जी भरकर देख···"

"हां यार, वही तो देख रहा हूं···"

"लेकिन तू चाहे मुझे हजार बार देख ले, मेरे बारे में तुझे कुछ भी पता नहीं चल पाएगा। सिर्फ आदमी के बाहरी रूप से, भीतर का हाल जानना मुश्किल है। बचपन में तुम लोगों ने मेरा सिर्फ बाहरी रूप ही देखा था, इसीलिए तुम लोगों ने मुझे निरा बेवकूफ मान लिया। तुम लोगों का ख्याल था कि जैसे मैं कुछ समझता ही नहीं। लेकिन दरअसल मैं ही तुम लोगों को हमेशा बेवकूफ बनाता रहा ! मैं सोचा करता था, तुम लोग कितने जड-मूर्ख हो···मेरा असली रूप नहीं पहचान पाए।"

मैंने अवाक् होकर पूछा, "अच्छा ! ऐसी बात थी ? तू भी हम लोगों को बेवकूफ समझता था ?"

"हां। और नहीं तो क्या ! मैं तुमलोगों को जान खपाकर पढ़ते-लिखते, परीक्षा के दिनों में रात-रात भर रटते हुए देखता था। तुमलोग सोचते थे कि सिर्फ मन लगाकर पढ़ने-लिखने भर से ही शायद जीवन में बड़ा हुआ जा सकता है या प्रातःस्मरणीय हुआ जा सकता है, लेकिन मैं ऐसे हजारों लोगों को देख चुका था, जिन्होंने एक अक्षर भी लिखाई-पढ़ाई नहीं की थी। वे लोग लाखों-लाखों रुपये कमा रहे थे और पाव पर पाव जमाए हुए बड़े आराम से दिन बिता रहे थे। अनगिनत लोग दूसरों के सिर नारियल तोड़कर महापुरुष बन बैठे थे और समाज के सिरमौर बने हुए गद्दी संभाल रहे थे। तुम लोग जब लम्बी-चौड़ी बातें किया करते थे, मेरी निगाह बरबस ही उनपर जा टिकती थी। मैं सोचता था, तुम लोग कितने बौडम हो ! उन लोगों की तरफ तुम लोगों की निगाह कभी गई ही नहीं। तुम लोग महज किताबों में लिखे हुए, कोरे-नीरस आदर्शों को कंठस्थ करके समझते थे कि वही एकमात्र

...ली सच है ! हालांकि मैं तुम लोगों की बातों का कोई जवाब नहीं ...ता था, लेकिन मन ही मन मैं इस फैसले पर पहुंच गया था कि तुम ...ोग जो कुछ कर रहे हो, सब झूठ और बोगस है !"

मैं विस्मय-विमुग्ध भाव से उसकी बातें सुनता रहा। मेरे ज्ञान-चक्षु जैसे खुलते जा रहे थे। मैं सोच रहा था, तापस यह सब क्या कह रहा है ?

तापस कहता गया, "इसीलिए एक दिन मैं घर से निकल पड़ा। तुम लोगों से बिना कुछ कहे-सुने एक रात मैं खाली हाथ ही अनिर्दिष्ट राह का राही बन गया। वैसे मैं यह जानता था कि तुम लोगों की तरह घर बैठे-बैठे, सुयोग्य पुत्र की तरह मां-बाप की आज्ञा मानकर चलते हुए, मैं भूखों नहीं मरूंगा। लेकिन दुनिया में क्या सिर्फ अपने को भूखों मरने से बचाए रखना ही सब कुछ है ? उससे भी बड़ी चीज़ की तरफ हमारी नज़र क्यों नहीं जाती ?"

"उसके बाद ?"

"उसके बाद, जो कुछ मैं हूं, वह तो तू देख ही रहा है।"

"नहीं, मुझे और कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। मैं तो सिर्फ इतना भर देख रहा हूं कि तू बाहर से बिल्कुल बदल गया है।"

तापस मेरी बात के उत्तर में एकबारगी चुप ही रहा। अचानक वह एक काण्ड कर बैठा। सीट के नीचे तापस का एक ट्रंक और एक सूटकेस पड़ा था। उसने सूटकेस खिसकाकर ट्रंक को खींचकर बाहर निकाला और ट्रंक का ताला खोलकर बाकी दोनों यात्रियों की तरफ पीठ करके ढक्कन उठाया।

ट्रंक का ढक्कन उठाते ही मैं चौंक पड़ा। भीतर ठठ की ठठ नो... की गड्डियां ! अगल-बगल, बीच में, ऊपर-नीचे, सब तरफ नोटों ... सजी-सजाई गड्डियां ! मैंने एक साथ इतने सारे नोट कभी नहीं ... थे। मुझे लगा, जैसे नोटों का पहाड़ लग गया है। वहां पांच-दस ... की गड्डियां नहीं, सब सौ और हज़ार के नोटों की गड्डि... थीं !

मुझे अपनी ओर ताकते हुए देखकर तापस ने पूछा, "देखा !

"हां'''!"

तापस ने फौरन ट्रंक का ढक्कन गिरा दिया। उसमें ताला लगाकर और सीट के नीचे धकेलकर, वह इत्मीनान से अपनी सीट पर आ बैठा। उसने एक नई सिगरेट जला ली और धुआं उगलते हुए पूछा, "देख लिया न! अब तो तू समझ गया न कि मैं क्या बन गया हूं?"

"यह सब क्या तेरे अपने रुपये हैं?"

"हां, अपने नहीं तो क्या गैरों के हैं!"

"इतना सारा रुपया! तेरे पास कैसे आया?"

तापस ने धीमी आवाज में कहा, "यह सब तो ब्लैक के रुपये हैं! वैसे नौकरी करके भी इतने रुपये कमाये जा सकते हैं! लेकिन जो मैं करता हूं, उसमें सिर्फ इतने रुपये ही नहीं बनते'''। तू मेरे बचपन का यार ठहरा, इसीलिए तुझे सब बता दिया। अभी तो और भी रुपये आएंगे। लगता है, इसका कहीं अन्त नहीं है, रे!"

मैंने दुबारा पूछा, "लेकिन इत्ते सारे रुपये आए कहां से, रे?"

"बताऊंगा। सब बताऊंगा। लेकिन पहले तू बता कि कहां जा रहा है? किसी काम से जा रहा है?"

मैंने अपना सारा हाल कह सुनाया।

तापस मेरी बातें गौर से सुनता रहा। अन्त में उसने अपनी राय जाहिर की, "तुम लोगों ने जो इतनी पढ़ाई-लिखाई की, उसका अन्त में बस यही फल निकला? लेकिन मुझे देख! तुझसे तो मेरा कुछ भी छुपा नहीं है। और लोगों के आगे मैं चाहे जितनी डींगें हांकूं, लेकिन तेरे सामने झूठ नहीं बोलूंगा। दरअसल, आदमी जो कुछ भी करता है, वह महज रुपया कमाने के लिए ही करता है! जो इन्जीनियरिंग पढ़ता है उसकी यही कोशिश रहती है कि इम्तिहान पास करके उसे मोटी तनखाहवाली नौकरी मिल जाए। जो डाक्टरी पढ़ रहा है, वह भी ऐसा ही कुछ सोचता है। जो राजनीति करता है, वह सोचता है कि कैसे वह जनता का सेवक बनकर इलेक्शन में खड़ा हो और वोटों के दम पर ढेर ढेर रुपयों का मालिक बने। असल में स्कूल-कालेज की किताबों में चाहे जो लिखा हो, लेकिन उनका असली उद्देश्य रुपया ही है। इसलिए, मैंने

दोस्त, अगर रुपया ही असली चीज है, तो मैं भी तो आखिर रुपया ही कमा रहा हूं और, सिर्फ तुम लोगों की ही बात नहीं, हिन्दुस्तान में बहुतों से बढ़-चढ़कर रोजगार कर रहा हूं ।"

अब मुझसे चुप नहीं रहा गया । मैंने पूछा, "सो कैसे ?"

"अरे भाई, मैं वही बात तो तुझे बताने जा रहा हूं । पहले यह बता, तू बम्बई जाकर किस होटल में ठहरेगा ? होटल में ठहरेगा या किसीके घर पर ?"

"होटल में ! मैं बराबर होटल में ही ठहरता हूं । आफिस खर्चा देता ही है ।"

"लेकिन इस बार तू होटल में क्यों ठहरेगा ? मेरे पास अपना फ्लैट है । सिर्फ बम्बई ही नहीं, हिन्दुस्तान के हर शहर में मेरा निजी फ्लैट है । मद्रास, महाबलीपुरम्, गोवा, यू० पी०, मध्यप्रदेश, श्रीरंगम्, बैंगलोर, केरल, कोचीन वगैरह के तमाम शहरों में ! यहां तक कि माउण्ट-आबू और उससे भी आगे द्वारका तक !"

"क्यों ? इतने सारे शहरों में तूने फ्लैट क्यों ले रखे हैं ?"

"बिजनेस ! व्यवसाय ! ! कारोबार ! ! ! कारोबार के सिलसिले में मुझे हिन्दुस्तान के प्रायः सभी स्टेटों में घूमना पड़ता है न ! अगर हर जगह मैं होटल में ठहरूं तो अनगिनत आलतू-फालतू लोगों से मुलाकात होने की सम्भावना है ! इसीलिए हर जगह मैंने पक्का बन्दोबस्त कर रखा है ।"

"ये सब तेरे खरीदे हुए फ्लैट हैं ?"

"हां । कहीं-कहीं किराए के फ्लैट भी हैं ! उनके किराए के लिए महीने-महीने हजारों-हजारों रुपये गिनने पड़ते हैं ! जबकि साल-भर में शायद एक बार भी उन फ्लैटों में ठहरने की नौबत नहीं आती । आम-तौर से मैं प्लेन में ही सफर करता हूं । इसमें वक्त की भी बचत है और मेहनत भी कम लगती है । मुमकिन है, अब तू यह जानना चाहे कि मेरे लिए वक्त अगर इतना ही कीमती है, तो आज मैं ट्रेन के फर्स्ट क्लास में क्यों सफर कर रहा हूं ? ट्रेन में सफर करने की वजह तो मैं तुझे दिखा ही चुका हूं । इसी ट्रंक की वजह से ! इतने रुपये लेकर प्लेन मे

सफर करने में खतरा था। मैं जिस धन्धे में हूं, उसमें मुसीबत आ सकती है।"

उसकी बातें सुनते हुए मेरा कौतूहल क्रमशः बढ़ता गया। तापस आखिर ऐसा कौन-सा धन्धा करता है ? धन्धा तो, खैर, बहुत-से लोग करते हैं। लेकिन उन्हें तो हिन्दुस्तान के समूचे शहरों में यूं फ्लैट रखने की जरूरत नहीं पड़ती। कहां बम्बई, कहां महाबलीपुरम्, कहां श्रीरंगम् और कहां माउण्ट-आबू ! यहां तक कि हिन्दुस्तान की बिल्कुल आखिरी सरहद पर पोर्ट द्वारका तक तापस की गतिविधियां फैली हुई हैं !

"तू माउण्ट-आबू क्या करने जाता है ?"

"वही—बिज़नेस। अरे यार, कारोबार की देखरेख करने के अलावा मुझे और कोई काम नहीं है। इसी कारोबार के सिलसिले में मुझे धरती, आकाश-पाताल तक का चक्कर लगाना पड़ता है।..."

उसने थोड़ा ठहरकर अपनी बात फिर शुरू की, "सो इस बार मैं तुझे होटल में नहीं ठहरने दूंगा। तुझे मेरे फ्लैट में ही ठहरना होगा। मैं तुझे छोड़नेवाला नहीं हूं..."

इसके बाद वह हमारे तमाम यार-दोस्तों के बारे में पूछताछ करता रहा। कौन किस स्थिति में है, क्या कर रहा है, वगैरह-वगैरह। हालांकि हाल-चाल सुनकर उसके मन में किसी तरह का उत्साह नहीं था। उसके चेहरे के हाव-भाव से यह साफ जाहिर था कि हर कोई उसके आगे हार गया। उसे कोई नहीं हरा पाया।

दोस्तों का हाल सुनकर उसने फिर अपनी बात दोहराई, "अब देख ! उन दिनों तुम सब मुझे देखकर हंसते थे। तुम लोग सोचते थे, मेरा कुछ नहीं होगा। क्यों, यही सोचते थे न ?"

मैंने स्वीकार किया कि हमारा सोचना गलत था।

"नहीं, दरअसल इसमें सिर्फ तुम लोगों की ही गलती नहीं थी। सारी दुनिया ही गलत थी। दुनिया में शायद किसीने भी यह नहीं सोचा था कि आज के जमाने में सारे आदर्श यूं बदल जाएंगे। ये भगवान-वगवान

...गैरह शब्द किसी दिन इतने खोखले साबित होंगे, इसकी किसीने कल्पना भी नहीं की थी। सच पूछो तो, इस भूल को सबसे पहले मैंने ही पकड़ा था।"

मैंने पूछा, "तूने ! सो कैसे ?"

"मुझे इस गलती के बारे में तब पता चला, जब मैं घर की चहारदीवारी से बाहर निकल आया। सच, अगर मैं घर से बाहर न निकला होता, तो मुझे भी इस भूल का पता नहीं चलता।"

मैंने दरियाफ्त किया, "घर से निकलकर तू कहां गया था ?"

"लखनऊ। लेकिन ये सब बातें यहां बैठकर नहीं की जा सकतीं।" उसने बाकी दोनों यात्रियों की तरफ इशारा करके कहा, "शुक्र है, वे लोग बंगला नहीं समझते। इसीलिए तुझसे बतियाता रहा। इन लोगों को हमारी बातों का एक अक्षर भी समझ नहीं आया होगा। अच्छा, अब बम्बई पहुंचकर, आराम से अपने फ्लैट में बैठकर तुझसे बातें होंगी।"

इतना कहकर तापस ने एक और सिगरेट सुलगा ली।

लम्बा सफर ! ट्रेन बीच-बीच में किसी स्टेशन पर ठहर जाती थी, फिर दुबारा चल पड़ती थी। बहुत दिनों बाद हम दोनों दोस्त मिले थे, सो पिछली बातों में ही सारा वक्त कट गया। इतनी लम्बी यात्रा, और पूरी रात और दिन के बाद फिर एक समूची रात ! अगले दिन दोपहर को अपना गन्तव्य आनेवाला था।

दरअसल इस कहानी का जो हिस्सा मैंने बयान किया, वह न तो इस घटना की शुरुआत है, न अन्त। यह तो महज बीच का थोड़ा-सा अंश-भर है ! यूं इसे अंश कहना भी ठीक नहीं—यह तो भग्नांश है।

तापस पर कोई कहानी लिखना इसलिए भी मुश्किल है, क्यों... उससे मेरा चरित्रगत विरोध है।

तापस को समझने के लिए, उसके जीवन-दर्शन को महसूस करने के लिए, अपने को भी तापस की ही मनःस्थिति तक उठाना जरूरी है। उस स्थिति को 'उठाने' के बजाय 'गिराना' कहा जाए, तो भी ... कोई अपराध नहीं होगा, क्योंकि भले-बुरे का मानदण्ड इतनी जल्दी और इतनी बार बदल जाता है कि किसी बात पर भरोसा नहीं ...

अपने को ही लगता है, मैं जिसे भला मानकर, उसपर विश्वास करता हूं, उसके सचमुच भले होने का मेरे पास क्या प्रमाण है ? जिसे मैं बुरा समझता था, आज वही समाज की वाहवाही लूट रहा है। सबका सिरमौर बना हुआ है।

इसलिए मैं इस फैसले पर पहुचा हूं कि हम भले-बुरे का विचार तभी करने बैठते हैं जब हमारे पास उसे साबित करने का कोई ठोस तर्क नहीं होता। इसके अलावा इस दुनिया में क्या सचमुच ऐसा कोई विचारक है, जो सही-सही विचार करता हो ? मुझे ऐसा विचारक कहीं नहीं दिखा।

खैर, भले-बुरे का विचार करना समाजशास्त्रियों के जिम्मे है। मैं तो रसिकों के लिए कहानी लिखता हूं। अतः मेरे लिए पाठक ही असली विचारक हैं। अगर यह कहानी उन्हें पसन्द आ जाए, तो मेरी सारी मेहनत और रात-रात भर जागना सचमुच सार्थक हो जाए।

सुना है, तापस की जिन्दगी लखनऊ से ही शुरू हुई थी। कलकत्ते से बिना टिकट सफर करते हुए तापस जब लखनऊ स्टेशन पर उतरा, उस वक्त भूख के मारे उसके पेट में चूहे कूद रहे थे। न उसकी जेब में फूटी कौड़ी थी, न शरीर में दम।

तापस अपनी कहानी सुनाने लगा :

उस दिन अगर मैं सड़क के किनारे दम तोड़ देता तो शायद तमाम झमेलों से छुट्टी मिल जाती। लेकिन विधि का विधान तो कुछ और था। दरअसल हमारा जन्मदाता बेहद परिहास-रसिक देवता है। उसे इन्सान से परिहास करने में बड़ा मजा आता है। हैरत की बात यह थी कि उसे दिल्लगी करने की सूझी और वह मुझ जैसे गरीब से मजाक कर बैठा।

जब मैं रास्ते पर खड़ा-खड़ा इस सोच में पड़ा था कि अब किधर जाऊं, क्या करूं, क्या खाऊं—उस समय सूरज देवता मेरे सिर पर एक सौ बीस डिग्री तापमान बरसा रहे थे, जिसे कहते हैं लू। रास्ते में इक्के-दुक्के लोग। उस समय मुझे सिर्फ एक ही चिन्ता थी कि इस वक्त मैं किसे पकड़ूं, कौन मुझे आश्रय देगा !

इन्सान जब मुसीबत में होता है, तो उसे भले-बुरे का ज्ञान नहीं

ा, यह मैंने किताबों में पढ़ा था। सच पूछो तो एकमात्र गरीब दमी ही स्वभाव से मस्तमौला होता है। उसके पास सहेजने या खोने कुछ भी नहीं है। उन दिनों मेरी भी यही स्थिति थी। अगर कहीं ाने को मिल जाता था तो वाह-वाह, वर्ना भूखों मरने में भी कोई नुकसान नहीं था। वैसे मुझे यह मौका भी नहीं मिला था कि अपने नुकसान के लिए किसीसे शिकायत कर सकूं। अचानक एक हादसा हुआ। मेरे सामने से ही एक महिला गुजरी, जो शायद अपनी गाड़ी पर घर लौट रही थी। उसकी गाड़ी बिल्कुल मेरे सामने आकर रुक गई। ड्राइवर गाड़ी रोककर नीचे उतरा और मेरे हाथ पर चार पैसे रखकर वापस जाने लगा।

मैंने गाड़ी में बैठी हुई महिला की तरफ एक नज़र देखा। गोरा-चिट्टा रंग! पके हुए बाल! बुढ़ापे की वजह से चेहरे पर झुर्रियां!

मेरी तरफ पैसे फेंककर ड्राइवर दुबारा अपनी सीट पर जा बैठा और गाड़ी स्टार्ट करके आगे बढ़ा।

चार पैसों की भीख पाकर मेरे आत्मसम्मान को जैसे चोट लगी। सिर्फ चार पैसे! जो आदमी गाड़ी चढ़कर घूमता है, उससे सिर्फ चार पसे का दान पाकर मेरे आत्मबोध को जैसे गहरा धक्का लगा।

मैंने झटपट आगे बढ़कर वे पैसे गाड़ी के अन्दर उछाल दिए। दुबारा अपनी जगह पर आ खड़ा हुआ।

मेरा ख्याल था, गाड़ी स्टार्ट हो चुकी है, अतः आगे बढ़ जाएगी। लेकिन नहीं, गाड़ी दुबारा रुक गई।

इस बार वह महिला स्वयं गाड़ी से उतरकर मेरे करीब आई। पूछा, "क्यों बेटा, गुस्सा हो गए क्या?"

मैं चकित रह गया! जाने कहां का मैं! मेरी खुशी या नाराजगी से इन्हें क्या फर्क पड़ता है? गरीबों के राग-विराग से आखिर मोटर विहारियों का क्या आता-जाता है?

महिला ने दुबारा कहा, "देखो, पइसा लछमी होत है। लछमी कहीं अइसे फेंका जात है? लछमी गुस्सा हुइ जइहैं।"

मैंने कहा, "भला इन चार पैसों से मेरा क्या बनेगा? आपके

ढेर-ढेर रुपये हैं, सो आपने चार पैसे फेंक दिए। आपको देते हुए संकोच नहीं हुआ, लेकिन मैं ठहरा गरीब आदमी। मुझे लेते हुए शर्म आती है। अब मैं चाहे भूखों मर जाऊं, लेकिन आपके इन पैसों को हरगिज हाथ नहीं लगाऊंगा।"

महिला मेरी बात सुनकर आश्चर्य में पड़ गई। मानो ऐसी बात जीवन में कभी नहीं सुनी। कहा, "अच्छा, हम एक ठो रुपइया दें तो लै लोगे?"

जाने मुझे क्या हो गया था! मैंने झटके से कहा, "नहीं।"

महिला का आश्चर्य और बढ़ गया। पूछा, "एक रुपइया देइबो तब भी नहीं लेइहो?"

मैंने कहा, "मैं परसों से भूखा मर रहा हूं। एक रुपये से मेरा क्या बनेगा?"

महिला ने अपनी जिन्दगी में शायद ऐसा भिखारी नहीं देखा था। पूछा, "तोहार घर कहां है?"

"बंगला देश। कलकत्ते में···"

महिला ने दुबारा पूछा, "इहां का करने आए हो? इहां तुम्हार कउन-कउन है?"

मैंने कहा, "कोई नहीं! मैं यहां काम की तलाश में आया हूं।"

महिला ने दरियाफ्त किया, "लेकिन, तुम कउन काम जानत हो?"

मैंने जवाब दिया, "कोई भी काम मिले, मैं कर लूंगा। खाने-पहनने और रहने के बदले मैं सब काम करूंगा।"

महिला ने पल-भर को सोचकर पूछा, "अच्छा, तुम मेरी कोठी में काम करोगे?"

"खाना मिले तो जरूर काम करूंगा।"

"ठीक है, चलो, मेरे साथ।"

मैंने कोई आपत्ति नहीं की! मैं उनके साथ गाड़ी में बैठ गया।

तापस अपनी कहानी सुनाता रहा—

वन्धु, मेरी वात अरव के किस्से-कहानियों की तरह अजीवोगरीव लग रही होगी ! लेकिन जिन्दगी में कव क्या घटनेवाला है, यह वात शायद विधातापुरुष भी नहीं जानता। मेरी तरह जाने कितने लोग अपने-अपने घरों से भाग खड़े होते हैं। उन्हें भी दर-दर हाथ फैलाना पड़ता है। उसके वाद एक दिन उसी रास्ते पर उनकी थकी-हारी लाश मिलती है। उसके वाद म्युनिसिपैलिटी की मुर्दा-गाड़ी आती है, उन्हें लादकर ले जाती है और फूंक-तापकर उनका नामोनिशान तक मिटा दिया जाता है ! लेकिन मेरे ही साथ ऐसा क्यूं हुआ ? मैं ही अपनी जन्मकुंडली में कौन-सा गुरु-वृहस्पति लेकर पैदा हुआ था ?

खैर, मैं जिस कोठी में पहुंचा वह राजप्रासाद से भी बढ़-चढ़कर थी।

उस वुढ़िया के कई लड़के थे। सभी की काफी उम्र हो चुकी थी। मां का लाया हुआ आदमी—उसे भला कोई कुछ कह सकता था ! लड़के मां की आज्ञा को गुरु-आज्ञा मानते थे। इसके अलावा कोठी में इतने सारे नौकर-चाकर थे कि उनमें एक और व्यक्ति के वढ़ने-घटने को लेकर कोई भला क्यों सिर-दर्द मोल लेने जाएगा !

जैसे वे लोग काम करते थे, मैं भी उसी तरह काम करने के लिए लाया गया था।

लेकिन एक दिन, दो दिन, तीन दिन गुज़र गए। मुझपर किसी तरह का कोई काम नहीं सौंपा गया। न किसीने कोई काम ही सौंपा, न निकम्मे पड़े रहने के लिए डांटा ही। हालांकि ठीक खाने के वक्त मैं हाज़िर हो जाता था और सवसे पहले खाने वैठ जाता था। उनके यहां का खाना शुद्ध शाकाहारी था। कोठी में मछली लाना सख्त वर्जित था ! खैर, मुझे भी कोई एतराज़ नहीं था। मुफ्त में रहने-खाने का इन्तज़ाम हो जाए तो मुझे और क्या चाहिए था ?

एक दिन कोठी के वड़े मालिक ने मेरे ज़िम्मे एक काम सौंपा।

वैसे काम भी क्या था ! वावू लोगों ने शहर से वाहर एक वगीचा खरीदा था। उसे वगीचा नहीं, वगान-वाड़ी कहना ही उचित होगा। वावा-आदम के ज़माने के वाग-वगीचों की डिज़ाइन पर सजा हुआ

बंगला। हालांकि बंगला बिल्कुल जर्जर स्थिति में था, लेकिन बगीचे के पेड़ वगैरह अब भी फल-फूल रहे थे। वहां आम के पेड़ ही अधिक थे। बगीचे की देख-भाल के लिए किसी आदमी की जरूरत थी। कोठी के अन्यान्य नौकर-चाकर दूसरे-दूसरे कामों में लगे हुए थे। एकमात्र मेरे जिम्मे ही कोई काम नहीं था। अतः बड़े बाबू ने मुझे वहीं भेज दिया।

शहर से कई मील दूर! चारों तरफ गांव और कतार-दर-कतार आम के पेड़। मुझे वहीं रहना था। अपने खाने के लिए दाल-भात मैं खुद ही बना लेता था और दिन-रात उस बगीचे की पहरेदारी करता था।

तनखा थी तीस रुपये!

आजकल तीस रुपये में कुछ नहीं होता, लेकिन उन दिनों यह रकम बहुत होती थी। उन दिनों सस्ती का जमाना था। इसके अलावा गांव होने की वजह से पैसे देकर कोई चीज खरीदने की जरूरत ही नहीं पड़ती थी। सिर्फ नमक और सरसों के तेल की खरीदारी के लिए पैसों की जरूरत पड़ती थी। चावल-दाल बाबू लोगों के खेत से आ जाता था और तर-तरकारी अपने बगीचे में ही काफी हो जाते थे। वहां खेती करने और मिट्टी फोड़ने के लिए अलग आदमी थे। वे लोग पेड़-पौधों और खेतों की देखभाल करते थे। मैं सिर्फ बंगले की रखवाली करता था।

चारों तरफ नीला-नीला आकाश और हरे-भरे पेड़ों का समारोह! वहां कलकत्ता या बम्बई जैसा शहरीपन नहीं मिलता था। पंछियों का कलरव सुनते हुए आराम से नींद टूटती थी। मैं उठकर कुएं से पानी खींचकर प्रेम से नहाता था और उसके बाद खुले आकाश के नीचे लोट लगाता था।

वे तमाम दिन कितनी ऐश से बीते, तुमसे क्या बताऊं, बन्धु! आजकल मैं लखपति नहीं करोड़पति बन गया हूं। एयर-कंडीशंड कमरे में सोता हूं! मेरा हुक्म बजा लाने के लिए हर वक्त ब्वाय मौजूद रहता है। बावर्ची हैं। मैं उनके ही हाथ का पकाया हुआ खाना खाता हूं। अब तो, दोस्त, मैं अपने जूते भी अपने हाथों से नहीं पहनता! लेकिन फिर भी मुझ जैसा आदमी भी यही सोचता है कि इन दिनों के बजाय वे पिछले

दिन ही बेहतर थे।

हालांकि उन दिनों मुझे सिर्फ तीस रुपल्ली मिलते थे, लेकिन उन दिनों तीस रुपये कमाकर जो सुख मिलता था, आज तीन लाख कमाकर भी उस तरह का सुख नहीं महसूस कर पाता, बन्धु ! इसे मेरे सृष्टिकर्त्ता का विराट परिहास ही कहना चाहिए।

वहीं एक अद्‌भुत कांड हो गया और उस अद्‌भुत कांड की वजह से ही आज मैं इतना अमीर बन पाया—इतने-इतने रुपयों का मालिक हूं।...

अच्छा, चलो, सारा किस्सा तुम्हारे सामने खोलकर ही कहूं—

उस लम्बे-चौड़े बगीचे के एक कोने में आम का एक पेड़ था। उसे काट डाला गया था। दो मजूर किस्म के लोग उस जगह को साफ कर रहे थे।

मिट्टी खोदकर जब वह पेड़ की जड़ें उखाड़ रहे थे, उनकी कुदाल किसी पत्थर से टकरा गई। उसी समय खट् से एक आवाज़ हुई। वे लोग सकते में आ गए। अरे, यहां पत्थर कहां से आया ?

जब मिट्टी खोदकर उसे बाहर निकाला गया तो पता चला कि वह पत्थड़ का टुकड़ा नहीं, पूरी मूर्ति है ! ठाकुर जी की मूर्ति की तरह !

पूरी मूर्ति कीचड़-कांटो और धूल में लिपटी हुई ! लेकिन मज़दूरों को यह पहचानने में कोई दिक्कत नहीं हुई कि वह किसी ठाकुर जी की ही मूर्ति है ! ठाकुर जी की उस टूटी-फूटी मूर्ति के प्रति उनकी कोई खास श्रद्धा नहीं उमड़ी। शायद इसीलिए वे लोग उसे एक कोने में फेंककर दुबारा अपने काम में लग गए।

जो पेड़ काटा गया था, वह काफी विशाल था। उस पेड़ की कीमत लगभग चार सौ रुपये लगाई गई थी।

जिस आदमी ने उस पेड़ का ठेका लिया था, शायद उसे भी उस मिट्टी या पत्थर की मूर्ति में खास दिलचस्पी नहीं थी। कटे हुए पेड़ खरीद-खरीदकर उन्हें लकड़ियों के व्यापारियों के हाथ बेच देना ही उसका मुख्य पेशा था।

शाम होते ही बगीचे के सामने एक लारी आकर रुकी। पेड़ के तनों

को लम्बा-लम्बा काटकर लारी पर लाद दिया गया और लोग अपना-अपना काम खत्म करके वापस लौट गए।

उसी दिन रात को मूसलाधार बारिश हुई। ऐसी भीषण बारिश, जिसने दो दिनों तक रुकने का नाम ही नहीं लिया।

बरसात होते ही, बगीचे में माली का काम काफी बढ़ जाता था। बरसात की वजह से दो-तीन दिन काम जरूर बन्द रहा, लेकिन बारिश थमते ही सब-के-सब जी-जान से दुबारा काम में जुट गए। बरसात के पहले सूखी मिट्टी पर एक बार हल चलाकर छोड़ दिया जाता था और बरसात के बाद गीली मिट्टी पर दुबारा हल फेरा जाता था। उसके बाद बुवाई का काम।

मैं सुबह से ही उनके काम-काज की चौकसी में लग जाता था। दोपहर को जब वे लोग अपना काम-काज रोककर आराम करते थे, उस वक्त मैं भी अपनी झोंपड़ी में आकर कुछ खा-पी लेता था।

उस दिन शाम को जब मैं मजदूरों के काम का हिसाब-किताब करके अपनी झोपड़ी की तरफ आ रहा था, काफी अंधेरा हो चुका था।

अचानक मेरी निगाह उन तीन-चार मजदूरों पर पड़ी जो अंधेरे में उस मूर्ति को उठाकर बाहर की तरफ ले जा रहे थे।

मैंने उन्हें रंगे हाथों पकड़ लिया, "इसे कहां ले जा रहे हो?"

उन लोगों से कोई जवाब देते नहीं बना। वे लोग [illegible] की तरह एक-दूसरे का मुंह निहारने लगे।

मैंने दुबारा पूछा, "तुम लोग किसके हुक्म से इसे [illegible] रहे थे?"

वे लोग उस समय भी हकला रहे थे, मानो [illegible] गए हों।

मैंने उस मूर्ति को अपनी झोपड़ी में रख दिया [illegible] लोग मेरी बात टाल नहीं सकते थे। काफी [illegible] नाम पर सिर्फ एक पल्लेदार दरवाजा और [illegible] लोग जिस कोठी में ठहरते थे, मेरी [illegible] थी। यूं पूरे साल उस कोठी में ताला [illegible]

कोठरी और सामने का बरामदा मेरे अख्तियार में था।

मैंने मजदूरों को वह मूर्ति अपनी कोठरी में रख आने का हुक्म दिया। पकड़े जाने की वजह से वे लोग यूं ही सहम गए थे। लेकिन, मुझसे कोई सजा न पाकर, उन्होंने जैसे राहत की सांस ली और बिना चूं-चपड़ किए, तेज कदमों से भाग खड़े हुए।

मेरे मन में जाने कैसा सन्देह जाग उठा। मेरा ख्याल था, उनके पीछे जरूर किसी दूसरे आदमी का हाथ है। वैसे उसे मूर्ति नहीं, पत्थर का टूटा-फूटा टुकड़ा ही कहना चाहिए। इसमें उनकी क्या दिलचस्पी हो सकती थी? इसे वे लोग क्यों ले जा रहे थे? कहां ले जा रहे थे?

मैंने मन ही मन तय किया कि बगीचे के मालिक के आते ही मैं उन्हें सारी घटना सुना दूंगा।

लेकिन मेरे मालिक कब और किस वक्त आ धमकेंगे, इसका कोई ठीक-ठिकाना नहीं था। कभी तो तीन-तीन महीने बिल्कुल आते ही नहीं थे और कभी महीने में दो-दो बार हाजिर हो जाते थे। अपने बन्धु-बान्धव, यार-दोस्तों के साथ आ धमकते थे और दिन-भर मौज-मजा करके शाम को गाड़ी हांकते हुए वापस लौट जाते थे।

मैं ही बाबू लोगों के लिए रोटी और कबाब तैयार कर देता था। मालिक लोग मुझे नौकर के अलावा और कुछ नहीं समझते थे। उनका ख्याल था, मैं किसी अनपढ़ किसान खेतिहर का बेटा हूं, यानी जितने दिनों तक मैं बाबू लोगों का कर्मचारी था, उन लोगों ने मुझे कभी इन्सान समझा ही नहीं। वे लोग शराब की बोतलें अपने साथ ही लेकर आते थे। मैं उनका खाना जुटा देता था। सामान खरीदने के लिए वे लोग मुझे रुपये दे देते थे। खर्च के बाद, जो रुपया बच रहता था, मेरे लौटाने पर भी वे लोग वापस नहीं लेते थे। वे रुपये बख्शीश के तौर पर मेरे हाथ पर रख दिया करते थे। मैं भी उन रुपयों से अपनी जेब गर्म करता था। बाबू लोगों के जाते ही मैं पुनः वही बगान-बाड़ी का मालिक बन जाता था।

महीने में सिर्फ एक बार अपनी तनखा के हिसाब-किताब के लिए मैं शहर की तरफ जाता था। वही तीस रुपल्ली। वहां जाते हुए अपने

साथ में बगीचे की थोड़ी-बहुत साग-सब्जी और फल-मूल भी ले जाता था। केला, पपीता, पालक-साग, लौकी, कुम्हड़ा—यानी बगीचे में जितना कुछ होता था, थोड़ा-बहुत मैं बाबू की कोठी में दे आता था। इसके अलावा गांव में साग-सब्जी, फल-मूल की बिक्री से जो रुपये मिलते थे, उसका भी पाई-पाई हिसाब दे आता था।

मेरे हाथों की साग-तरकारी देखकर वह बुढ़िया गद्‌गद् हो जाती थी।

विधवा औरत! बेहद धर्मभीरु! उसके पति ने अपने हाथों से यह बगान-बाड़ी बनवाई थी। अब बेटे और नाती-पोते उसका सुख भोग रहे थे। असल में सुख-भोग भी नहीं, पुरखों की जायदाद दोनों हाथों से लुटा रहे थे।

मुझसे पहले जो आदमी यहां काम करता था, वह न तो फल-फूल पहुंचाता था, न रुपये-पैसों का ही हिसाब देता था। साल में सिर्फ एक बार आम, जामुन, कटहल, सफेदा बेचकर नाममात्र के रुपये उनके हाथ पर रख देता था और बाकी अपनी जेब में डाल लेता था। इसीलिए बुढ़िया ने आग-बबूला होकर उसे खदेड़ दिया और उसकी जगह उस सिंहासन पर मुझे ला बिठाया।

खैर, बन्धु, उन दिनों मैं भी कुछ और ही तरह का जीव था। जैसे तुम लोग हो, वैसा ही। उन दिनों मैं भी भगवान, परलोक, स्वर्ग-नर्क में विश्वास करता था। सच पूछो तो उन दिनों मैं तुम लोगों की तरह बिल्कुल अनाड़ी था।

और इसी तरह मेरे दिन कटते जा रहे थे।

उन्हीं दिनों एक बेहद रईस आदमी से मेरी मुठभेड़ हो गई। उसे रईस आदमी इसलिए कह रहा हूं, क्योंकि रईस हुए बिना उसके जैसा चेहरा-मोहरा पाना नामुमकिन है। एक शाम मेरे बगीचे के सामने एक जीप आकर रुकी। वह आदमी अकेला नहीं था। यूं भी, अकेले-अकेले दरबार लगाने में किसी तरह का आभिजात्य भाव हरगिज नहीं टपकता।

सचमुच रईस होते हैं, उनके साथ ढेर-सारे लाव-लश्कर, अर्दली-प्याद
गैरह ज़रूर रहते हैं ! वे महाशय सीधे मेरे पास आकर खड़े हो गए।

उस वक्त मैं रसोई की तैयारी में था।

उन महाशय ने मेरे पास आकर सीधे यही सवाल किया, "इस बगीचे का केयर-टेकर कौन है ?"

"मैं ! आपको क्या काम है ?"

वह महोदय इतनी आसानी से पकड़ाई में आनेवाले नहीं थे। दर-असल, जब कोई मन ही मन मतलब गांठ रहा होता है तो ऊपर से आलतू-फालतू बातें करके, अपने स्वार्थ को ढंके रखता है। किसी चोर-दरवाज़े से ही असली बात छेड़ता है, और अपना मतलब पूरा करने में सफल हो पाता है। दुनिया का यही आम नियम है—

उन्होंने पूछा, "आप बंगाली हैं ?"

"जी हां !"

वे सज्जन अभी तक उसी तरह खड़े थे। मैं भी उसी तरह अपनी रसोई में व्यस्त था। मेरा ध्यान तो इस तरफ लगा था कि कहीं कुछ
न जाए। कोठरी के कोने में मेरी खटिया टंगी हुई थी। उसकी
रफ इशारा करके उन्होंने पूछा, "क्या इसपर मैं बैठ सकता हूं ?"

"बैठिए न !" यह कहकर मैं खटिया बिछाकर उसकी धूल झाड़
लगा।

उन सज्जन ने खटिया पर बैठते हुए कहा, "बंगालियों की मैं
तारीफ करता हूं। ये लोग खासे बुद्धिमान होते हैं। सच पूछो तो
लियों ने ही फिरंगियों को हिन्दुस्तान से खदेड़कर काला पानी भेज
नेताजी तो महान बहादुर थे..."

मैं समझ गया, यह सब महज ढोंगबाज़ी है। ये जनाब असल
पर धीरे-धीरे आएंगे।

उन्होंने भात की हांडी पर निगाहें गड़ाकर पूछा, "आप अप
शायद खुद पकाते हैं ?" फिर खुद ही अपनी भूल सुधारते
"वैसे अपना खाना खुद ही पकाना चाहिए, केयर-टेकर जी !
भी अच्छी रहती है और खाकर परम तृप्ति भी मिलती है।

का खाना खाने के सैकड़ों खतरे हैं।'''कुछ दिनों बाद सारी देखभाल धरी रह जाती है।"

मैंने कहा, "देखिए, मैं गरीब आदमी हूं। सिर्फ तीस रुपये तनखा मिलती है। रसोइया रखने की मुझमें औकात कहां है?"

वे सज्जन समझ गए। उन्होंने कहा, "बिल्कुल! बिल्कुल!! यह तो आपने ठीक कहा'''"

उन्होंने थोड़ा ठहरकर दुबारा कहा, "लेकिन कुछ भी कहिए, आपके बाबू लोग आपको बहुत कम तनखा देते हैं। तीस रुपयों से क्या होता है भला? आपका काम चल जाता है?"

मैंने स्वीकार किया कि इतने से काम नहीं चलता।

अचानक उनकी नजर उस पत्थर की मूर्ति पर जा पड़ी। मैंने उनके चेहरे की तरफ गौर से देखा। वे एकदम उस मूर्ति को घूर रहे थे।

उन्होंने सवाल किया, "अरे'''वह क्या है, केयर-टेकर जी?"

"यूं ही, एक पत्थर की मूर्ति!"

"पत्थर की मूर्ति? आप इसका क्या करते हैं?"

"कुछ भी नहीं। बगान की मिट्टी के नीचे दबी पड़ी थी। पेड़ काटते हुए मिल गई।"

"लेकिन आपने इसे क्यों रख छोड़ा है?"

"यूं ही। मालिक की चीज मालिक को ही सौंप दूंगा।"

"क्यों, मालिक लोग इसका क्या करेंगे?"

"कुछ भी नहीं करेंगे। लेकिन मैं ठहरा मालिक का चाकर। मालिक की चीज मालिक को लौटा देना मेरा फर्ज है।"

वे सज्जन उठ खड़े हुए, "अच्छा, एक बार जरा इसे अच्छी तरह देख लूं।"

इतना कहकर वे जूते उतारकर कोठरी के अन्दर घुस आए। उन्होंने मूर्ति के करीब जाकर बेहद गौर से निहारते हुए कहा, "यह तो गणेश जी की मूर्ति है।"

"हां, ऐसा ही लगता है।"

"मेरी बहुत दिनों की साध है, कि मैं अपनी दुकान में गणेशजी की

मूर्ति प्रतिष्ठित करूं। लेकिन मुझे कोई अच्छी मूर्ति ही नहीं मिल रही।"

"आपको अगर यह मूर्ति पसन्द हो तो मुझसे बताइए। मैं अपने मालिक से पूछ देखूंगा। अगर वह मान गए तो मैं यह मूर्ति आपको दे दूंगा।"

मैंने पल-भर कुछ सोचकर फिर कहा, "नहीं तो आप एक काम और कर सकते हैं। मुझसे पता ले जाइए और मेरे मालिक से खुद ही मुलाकात कर लीजिए। वैसे मेरे मालिक काफी भले आदमी हैं।"

वे सज्जन हंस पड़े।

मैंने पूछा, "क्यों ? हंस क्यों रहे हैं ? आपको भरोसा नहीं हो रहा है ?"

वे सज्जन मेरी बात पर खिलखिलाकर हंस पड़े। उन्होंने कहा, "दरअसल अभी आप बहुत कच्ची उम्र में हैं, इसीलिए ऐसी बात कर रहे हैं। अरे, जब आप मौजूद हैं तो मैं आपके मालिकों से मिलने क्यों जाऊंगा ? असली मालिक तो आप ही हैं। मैं आपके मालिक को नहीं पहचानता। मैं तो बस आपको ही पहचानता हूं। मुझे तो आपसे ही बात करनी है···"

मैं समझ गया, यह आदमी काफी घाघ है। नम्बरी शैतान ! लेकिन मैंने अपने मनोभाव छुपाते हुए कहा, "कहिए, आप क्या चाहते हैं ?"

"आप अभी कह रहे थे कि आपको सिर्फ तीस रुपये मिलते हैं। तीस रुपये में आपका काम चल जाता है ? और फिर, तीस रुपये में आप जैसा भलामानस भला कहीं मिलता है ? साफ-साफ कहूं···? अगर आपके मालिक आप जैसे भलेमानस को सिर्फ तीस रुपल्ली के बदले इतना-इतना खटाते हैं, तो आपको अगर कुछ अतिरिक्त रुपयों की आमदनी हो जाए तो क्या हर्ज है ? मान लीजिए, तीस रुपये अगर मैं आपको दे दूं ? तो इन तीस रुपयों से आप अपने लिए कुछ नये कपड़े खरीद सकते हैं, और शायद मेरा भी कुछ भला हो जाएगा···"

"इससे आपका क्या भला होगा ?"

"क्यों, मुझे गणेशजी की मूर्ति जो मिल जाएगी।"

"लेकिन आप गणेशजी की यह मूर्ति लेकर क्या करेंगे ? बाजार से सिर्फ पांच रुपये में आप इससे बेहतर और खूबसूरत मूर्ति खरीद सकते हैं।"

"हां, खरीद तो सकता हूं। लेकिन जब लोगों के मुंह से यह चर्चा सुनी कि आपके बगीचे में गणेशजी की एक प्राचीन मूर्ति मिली, तो मैं उसे देखने को उत्सुक हो उठा। अरे भइया, पुरानी और नई मूर्ति क्या बराबर है ? मान लीजिए, पुराने जमाने में यह मूर्ति किसी मन्दिर में प्रतिष्ठित रही हो ! जाने कितने लोगों ने इस मूर्ति की पूजा-अर्चना की होगी। मेरा मतलब है, इस मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा तो कब की हो चुकी है। इसकी मर्यादा ही अलग है। इसीलिए मुझे यह मूर्ति पसन्द आ गई है।"

मेरे दिमाग में एक बात खेल गई। मैंने सोचा, जब यह मूर्ति इस आदमी को इतनी पसन्द आ गई है, तो वह इसे खरीदे बिना नहीं मानेगा। मैंने मूर्ति की कीमत जरा बढ़ा दी। तीस रुपये तो इस आदमी के लिए कुछ भी नहीं होंगे। जब जीप में आया है तो जरूर कोई बड़ा आदमी होगा।

मैं मन ही मन हिसाब लगाने लगा कि इस आदमी से मुझे कितना मांगना चाहिए। ठीक है; पचास रुपया मांगूंगा।...लेकिन अगर मैं पचास की जगह सौ रुपये मांगूं तो ?...

सो, यार, मेरे मन में लोभ जाग उठा। अचानक किसी घटना-चक्र में वह मूर्ति यूं ही पड़ी मिल गई थी। इससे मुझे अच्छी-खासी आमदनी हो जाएगी, इसका तो मुझे अन्दाज भी नहीं था। मुमकिन है, ये रुपये दिलाने में खुद भगवान ही सहाय हुए हों। मैं भगवान को चाहे मानता होऊं या न मानता होऊं, लेकिन इसके पीछे किसी अदृश्य-शक्ति का हाथ जरूर है, उस दिन यह विश्वास करते हुए मुझे अच्छा ही लगा था, दोस्त।

मैंने कहा, "अगर आप दो सौ रुपया देने को तैयार हों तो मैं वह मूर्ति आपको दे सकता हूं।"

मैंने कीमत जरा बढ़ा-चढ़ाकर ही बताई थी। मेरा ख्याल था कि

मोल-तोल के वाद मामला सौ रुपये में पट जाएगा ।

लेकिन वे सज्जन फौरन राज़ी हो गए । उन्होंने अपनी जेव से दस-दस के वीस नोट निकालकर मेरी तरफ वढ़ा दिए ।

मैं अवाक् रह गया । वैसे मुझे मन ही मन अफसोस होने लगा था । मैंने जल्दवाज़ी में सिर्फ दो सौ रुपये ही क्यों मांगे ? उनसे चार सौ रुपये तो मांग ही सकता था । मैं अपनी वेवकूफी पर रह-रहकर पछता रहा था ।

लेकिन अव तो तीर हाथ से छूट चुका था । उसे लौटा लाने का कोई उपाय नहीं था ।

वह सज्जन रुपये चुकाकर गणेश की मूर्ति उठवाकर चल दिए । उनके साथ और भी कई लोग थे । उन लोगों ने ही मूर्ति उठाकर जीप में रखी । जीप चल पड़ी और कुछ पलों में ही अदृश्य हो गई ।

काफी देर तक हाथ में रुपये लिए हुए मैं गुमसुम खड़ा रहा । मैं सचमुच चक्कर में पड़ गया था कि यह क्या हुआ ? वह आदमी उस टूटी-फूटी-सी मूर्ति के लिए मुझे इतने सारे रुपये क्यों थमा गया ? आखिर उस मूर्ति में ऐसी क्या खासियत थी, जिसके लिए इतना ऊंचा दाम उ गया ?

जिन्दगी में, इससे पहले, कभी इतने सारे रुपये एक साथ नहीं मि थे, वन्धु ! उन दिनों मेरी तनखा सिर्फ तीस रुपये थी । उस वक्त सौ रुपये मेरे लिए वहुत वड़ी रकम थी । मेरी छः महीने की तनखा भी अधिक ।

उस वक्त मेरे मन में एक तीखी चाह जाग उठी । काश, वगान मिट्टी खोदते-खोदते एक और मूर्ति मिल जाए, मुझे दो सौ रुपयों अतिरिक्त आमदनी और हो जाए ।

उस दिन से मैं वगीचे के काम-काज की कड़ी निगरानी करने ल अव मैं कभी-कभार खुद भी कुदाल लेकर मजदूरों के साथ मिट्टी में लग जाता था ।

एक दिन अचानक ही वगीचे के मालिक आ धमके । मुझे खोदते देखकर वे वेहद खुश हुए ।

मालिक ने मुझसे दरियाफ्त किया, "अरे, तुम खुद मिट्टी खोदने में क्यों लगे हो ?"

"असल में ये लोग ठीक तरह खोदना नहीं जानते। सो मैं उन्हें दिखा रहा था।"

मालिकों पर मेरी बात का गहरा असर पड़ा। उन्होंने वापस जाकर मेरी तनखा में पांच रुपये और बढ़ा दिए और अगले महीने ;के पहले सप्ताह में, जब मैं तर-तरकारी, फल-फूल लेकर कोठी में पहुंचा तो बूढ़ी मालकिन ने मेरी खूब खातिर की।

मैंने यह भी महसूस किया कि इस बार मेरा खाने-पीने का इन्तज़ाम पहले से बेहतर था। मुझसे पहले जो आदमी उनके यहां नौकरी करता था, उसके कामों की तुलना में मेरी मान-मर्यादा दस गुना अधिक बढ़ गई थी।

उनकी नज़र में मैं सत्, निष्पाप और साधु कर्मचारी साबित हो चुका था। मेरी ईमानदारी उनका विश्वास जीतने में सफल हो गई थी। यह बात मेरे भावी जीवन में काफी काम आई। धीरे-धीरे मैं शातिर चोर, बेईमान और शैतान बनने की दिशा में अग्रसर हो उठा।

इसके बाद ही एक और हादसा हुआ।

मेरी ज़िन्दगी की यह चिर-स्मरणीय घटना है।

उस दिन दोपहर को मैं लेटा हुआ था। खाना-पीना निबटाकर थोड़ी देर आराम करना जैसे मेरी रोज़ की आदत बनती जा रही थी। अचानक अपना नाम पुकारे जाने पर मेरी तन्द्रा टूटी तो सामने एक साहब पर निगाह जा पड़ी।

अंग्रेज़ साहब ! अजीबोगरीब हुलिया ! साधु-संन्यासियों-सा चेहरा ! सर पर लम्बे-लम्बे बाल ! गेरुआ रंग का खद्दर का पायजामा ! वह भी जगह-जगह से फटा हुआ ! बदन पर एक नई बनियाइन।

मैंने अन्दाज़ लगाया कि साहब ज़रूर कोई पागल आदमी है। मैंने सवाल किया, "तुम बगीचे में क्यों चले आए ? देखो, यहां भीख-वीख मिलने से रही। मालिक लोग यहां नहीं रहते'''।"

उस आदमी ने हिम्मत नहीं हारी। मेरे बिल्कुल करीब ही ज़मीन

लिया करूंगा और खोज-खबर ले जाया करूंगा ! ओ० के० !"

साहब का हाव-भाव देखकर जाने क्यों मेरे मन में अजीब-सा सन्देह जाग उठा। जाने यह आदमी अन्त में रुपये भी देगा या नहीं ?

मैंने पूछा, "रुपये ? रुपये कितने दोगे ?"

साहब ने कहा, "रुपये की चिन्ता मत करो। मूलचंद ने तुम्हें जो दिया है, मैं उसका डबल दूंगा।"

"देख लो। इधर मैं मूलचंद को खाली हाथ लौटा दूं और उधर तुम भी लापता हो जाओ, तो इस बेकार के चक्कर में मेरे रुपये मारे जाएंगे। कहीं ऐसा तो नहीं होगा ?"

साहब ने कहा, "अगर तुम्हें इतना ही डर लग रहा है तो मैं तुम्हें कुछ एडवान्स दिए जाता हूं।" कहते हुए उसने पेण्ट के हिप-पाकेट से कुछेक नोट निकालकर मेरी तरफ बढ़ा दिए।

मैंने उन नोटों को अच्छी तरह गिनकर देखा। दस-दस के दस नोट ! कुल मिलाकर सौ रुपये !

साहब मेरी आंखों का भाव पढ़ रहा था। उसने मेरा हौसला बढ़ाते हुए कहा, "यह मत समझ लेना कि ये पूरे रुपये हैं। यह तो सिर्फ एडवान्स-भर है। अपनी चीज मिलते ही तुम्हें और रुपये दूंगा।"

मैं समझ गया, मुझे लालच दिया जा रहा है। खैर, किसीके लालच देने से मेरा क्या नुकसान होता है ? मेरा एक पैसा-भर भी नुकसान नहीं ! अगर मैं माल नहीं दे पाया तो हो सकता है, और रुपये न मिलें। अरे, बहुत होगा तो एडवान्स के रुपये वापस करने होंगे, बस्‌ !

अतः मैंने कहा, "ठीक है।"

"अच्छा, तो मैं चलूं। बॉय-बॉय !"

साहब हाथ उठाकर पांचों उंगलियां हिलाते हुए बगान से बाहर निकल गया। मैं थोड़ी देर किंकर्तव्यविमूढ़-सा चुपचाप बैठा रहा। मेरे दिमाग में जमीन-आसमान की बातें चक्कर लगाने लगीं।

अगले दिन से मैं बगीचे की राई-रत्ती जमीन छानने में व्यस्त हो गया।

काश ! एक मूर्ति निकल आए। कम से कम एक मूर्ति। अगर एक भी मूर्ति मिल जाए तो हाथ में ढेर-सारे रुपये आ जाएंगे।

मैं कुदाल उठाकर जी-जान से मिट्टी खोदने में जुट गया। जहां कोई जरूरत नहीं थी, वहां भी खोद डाला। जहां बड़े-बड़े पेड़ खड़े थे, उसकी जड़ें भी खोद डालीं। मिट्टी खोदते-खोदते मैं हैरान हो गया।

अन्त में मैंने एक मजदूर तय किया। एक रुपये रोजाना का मजदूर। उसे उसी दिन से मिट्टी खोदने में लगा दिया।

मैंने उसे काफी गहरे तक खोद डालने का आदेश दिया। मैं खुद भी उसके साथ छाया की तरह लगा रहा। बीच-बीच में कुदाल उठाकर खुद भी गड्ढा खोदने में जुट जाता था।

उस दिन मूसलाधार बारिश हुई थी। बरसात के दिनों में बारिश का पानी बगान से होकर बहता हुआ पासवाली नदी में जा मिलता था या फिर किसी दूसरे के बगीचे की तरफ बह जाता था।

लेकिन मिट्टी खोदने की वजह से बगीचे की खेती-बाड़ी, पेड़-पौधे काफी गदरा उठे।

अचानक एक दिन बगान के मालिक आ पहुंचे। खैर, मेरे मालिक तो हमेशा यूं ही अचानक आ धमकते थे। उन्होंने पूछा, "इतनी सारी मिट्टी क्यों खोद डाली ?"

मैंने कहा, "ताकि जमीन की फसल अच्छी हो और पेड़ में बढ़िया फल लगें।"

मालिक मेरी बात सुनकर गद्गद हो गए। मैं कितना योग्य माली हूं, इसका प्रमाण पाकर वे लोग मुझपर इस कदर मेहरबान हो गए कि फौरन पांच रुपये नकद बख्शीश दे डाली। मालिक तो खैर उसी दिन लौट गए लेकिन मेरा मिट्टी खोदना बन्द नहीं हुआ। लेकिन काफी खोदने के बाद भी वैसी एक भी मूर्ति नहीं मिली। मैं अपनी कोठरी में लेटा-लेटा भगवान से मनाया करता था कि हे भगवान ! बस एक मूर्ति और दिला दो तो मेरे हाथ में कुछ रुपये आ जाएं...।

कुछ दिनों बाद अचानक साहब फिर आ टपका। उसके साथ एक मेम-साहब भी थी। मेमसाहब के कपड़े-लत्ते भी साहब की तरह थे। मैला कुर्ता! अस्त-व्यस्त रूखे बाल! पांवों में सस्ते दामोंवाली एक जोड़ी रबड़ की चप्पल! लेकिन उसका चेहरा बेहद मोहक था।

साहब ने पूछा, "क्या हुआ? कुछ जुगाड़ हुआ?"

"नहीं। देख लो, साहब, कितनी सारी मिट्टी खोद डाली। मिट्टी खोद-खोदकर सारा बगान छलनी कर डाला—लेकिन इतनी कोशिशों के बाद भी कुच्छ नहीं मिला।"

मुझे डर था कि साहब शायद अपने रुपये वापस मांगेगा। लेकिन साहब ने कहा, "खोजो—और खोजो···हां, तुम्हें अगर और रुपयों की जरूरत हो तो बताओ।"

"आप तो समझते ही हैं, रुपये की जरूरत किसे नहीं होती? रुपया तो सभी चाहते हैं···"

साहब ने फौरन पैण्ट की पिछली जेब से कुछेक नोट निकालकर मेरी तरफ बढ़ाते हुए कहा, "लो, रख लो। एक सौ रुपये और देता हूं···"

मैंने हाथ फैलाकर रुपये समेट लिए। लेकिन मन ही मन कहीं डर भी लगा—मैंने रुपये ले तो लिए! लेकिन अगर ये रुपये न चुका पाया तो?

मेरी निगाहें उनके चेहरे पर जा टिकीं। साहब और मेमसाहब के चेहरे पर कोई विकार नहीं था। उनके चेहरे-मोहरे या कपड़े-लत्ते से यह कतई जाहिर नहीं होता था कि उनके पास इतने रुपये हैं। जब तक किसीके पास ढेर-ढेर रुपये न हों, इस तरह सौ-दो सौ रुपये बांटना नामुमकिन है।

उन दिनों मेरी यही धारणा थी, बन्धु! हां, अब मैं जरूर बदल गया हूं। अब मैं भी समझ चुका हूं कि रुपये के बारे में अगर रंचमात्र भी दुविधा रह गई, तो रुपये कभी नहीं आते। रुपया ऐसी चीज है कि हाथ में आने के बाद उसे कभी अस्वीकार नहीं करना चाहिए। हां, रुपये को कभी 'ना' नहीं करना चाहिए। बात दरअसल यह है कि

रुपयों से डरता है, उससे रुपया भी डरता है। जो आदमी पाने की खुद कोशिश नहीं करता, रुपया भी उसके पास आने की शिश नहीं करता। उन दिनों, भला, ऐसा कौन था, जो मुझे ये स देता !

खैर, रुपये जैसी चीज के मामले में कुछ सीखने की ज़रूरत भी हीं पड़ती। जब हाथ में रुपये आते हैं तो आदमी खुद-ब-खुद सीख लेता है। जैसे बाहरी आघातों से आत्मरक्षा हमारा कर्तव्य है, उसी तरह रुपया भी अपनी आत्मरक्षा से परिचित है। रुपया खुद ही इन्सान को आत्मरक्षा के तरीके बता देता है। यह रुपया ही आदमी को सीख देता है—देखो, हमें बैंक में जमा कर दो ! हमें उड़ाओ मत, वर्ना हम भी तुम्हारा नामोनिशान मिटा देंगे···।

खैर, उस दिन साहब रुपये फेंककर चला गया। लेकिन, मैंने बताया न, उन दिनों मैं काफी अनाड़ी था, अतः मेरी जान अजीब आफत में फंस गई।

उस दिन से मेरी आंखों की नींद, मन की चैन हराम हो गई। इतने सारे रुपये मैं आखिर चुकाऊंगा कैसे ? अगर मैं साहब को कोई मूर्ति न दे पाया तो ?

साहब ने कहा, "मूर्ति तुम्हें ज़रूर मिलेगी ! तुम इतने परेशान क्यों होते हो ?"

मैंने जवाब दिया, "क्या पता ! सब कुछ किस्मत की बात है। असल में वह मूर्ति मेरी किस्मत में थी, इसीलिए अचानक पड़ी मिल गई··"

दो सौ रुपये ! उस समय मैं नकद दो सौ रुपये का मालिक था। हालांकि मुझे उसके लिए करना कुछ भी नहीं पड़ता था। यह मुमकिन है कि मुझे जी-तोड़ मेहनत करते देखकर, साहब ने ये रुपये मुझे यूं पकड़ा दिए हों।

साहब के चले जाने के बाद कुछ देर तक मुझे कुछ नहीं सूझ प इस तरह हाथ में आए हुए रुपये अन्त में क्या यूं ही वापस चले जा लक्ष्मी अगर खुद न आई होती तो अलग बात थी। लेकिन एक

आकर अगर हाथों से फिसल जाए तो आदमी भाग्यहीन समझा जाता है। अत: अब मैं कतई निश्चिन्त होकर बैठनेवाला नहीं था। अब चाहे जैसे भी हो—चाहे मिट्टी खोदकर हो या फिर किसी और तरीके से मुझे एक न एक मूर्ति का इन्तजाम करना ही होगा।

इसी बीच मूलचन्द एक दिन मुझसे मिलने दुबारा आ धमका। उसने पूछा, "क्यों केयर-टेकर जी, फिर किसी मूर्ति का पता-वता चला?"

मैंने छूटते ही कहा, "नहीं, मूलचन्दजी, अब मैं आपको मूर्ति नहीं दूंगा। आपने मुझे बहुत बुरी तरह ठग लिया।"

मूलचन्द मेरा रुख देखकर बुरी तरह सकपका गया। उसने पूछा, "क्यों? मैंने क्या किया? मैंने तो तुम्हें रुपये दिए ही थे।"

"हां—दिए तो थे, लेकिन बहुत कम रुपये दिए थे। असल में आपने मुझे चकमा दिया है।"

"अरे! कौन कहता है कि मैंने तुम्हें चकमा दिया? किसीने जरूर मेरे खिलाफ तुमसे कुछ जड़ दिया है।"

मैंने इससे अधिक खुलना उचित नहीं समझा। मैंने सिर्फ इतना कहा, "जी नहीं। उस बार जो हुआ, सो हुआ। अब मैं उतने कम दाम में माल नहीं दूंगा।"

मूलचन्द ने कहा, "तो तुम्हें कितना चाहिए? बताओ न!"

"मुझे पांच सौ रुपये चाहिए।"

"पांच सौ रुपये!" मूलचन्द चौंक उठा, "पांच सौ तो बहुत होते हैं! देखो, अगर पहले जैसी बढ़िया मूर्ति दे सको तो मैं तुम्हें तीन सौ रुपये तक दे सकता हूं।"

"जी नहीं! नामुमकिन! मैं पांच सौ रुपये लूंगा। उससे एक पैसा कम नहीं लूंगा···"

हैरत है! मूलचन्द फौरन राजी हो गया।

उसने कहा, "ठीक है। अभी से ही मोल-भाव करने से क्या फायदा? पहले मैं चीज तो देखूं, उसके बाद दर-दस्तूर किया जाएगा···" मूलचन्द यह कहकर चला गया।

सारा मामला समझकर मेरे तो जैसे ज्ञान-चक्षु खुल गए। मै... नता था कि इन टूटी-फूटी मूर्तियों के इतने ऊंचे दाम लगाए जाते हैं ? हले से पता होता तो भला इस कदर धोखा खाता ! खैर, इसके बाद मैं जी-जान से जुट गया।

मालिक के बगीचे का चप्पा-चप्पा छानकर हार गया और यह मैं अच्छी तरह समझ गया कि उनके बगीचे में अब किसी नई मूर्ति की आशा बेकार है। इसीलिए कुछ दिनों से मैं शाम का काम-काज निबटा-कर बाहर निकल पड़ता। यूं उस गांव को बहुत छोटा भी नहीं कहा जा सकता था। पता चला कि किसी ज़माने में यहां अच्छा-खासा शहर था। लोगों की ज़ुबानी जो कुछ सुना, उससे यही अन्दाज़ लगाया कि यह जगह काफी पुरानी है। कहते हैं, पांच सौ या हज़ार वर्ष पहले यह गांव लखनऊ शहर से भी बड़ा था। यहां हिन्दू राजा राज्य करते थे। उन दिनों इस जगह का नाम था बिम्बवती। अब वही अपभ्रंश रूप में ...िया कहलाने लगा है। हिन्दू राजाओं के ज़माने में हिन्दुस्तान के चारों ...फ से गुणी-ज्ञानी, पंडित लोग विभिन्न कारणों से बेतिया आया करते । उन दिनों राजे-रजवाड़े काफी धार्मिक होते थे। वे लोग अपने ...ाज्यकाल में काफी दान-पुण्य भी कर गए थे। मन्दिर, धर्मशाला, सराय, मठ, चतुष्पाठी वगैरह बनवा गए थे। बनारस, श्रीक्षेत्र, नालन्दा वगैरह से विद्यार्थी लोग आया करते थे। यहां के राजा ही उनके रहने-खाने क... यथोचित प्रबन्ध करते थे। ब्राह्मण-विद्वानों का यहां खास सम्मान हो... था। उस सम्मान के लोभ में यहां आगत मेहमानों की संख्या क्रम... बढ़ने लगी। अत्याचार के भय से दिल्ली, आगरा के ब्राह्मणों ने भी... आश्रय लिया। यहां धर्मच्युत होने का भी कोई भय नहीं था। यथो... सम्मान के अलावा खास-खास व्यक्तियों को उपहार में ज़मीन-जायदा... दी जाती थी। वंशानुक्रम परम्परा से उन लोगों ने यहीं धर्म-चर्चा, पाठन और पूजा-अर्चन का कार्य अपना लिया।

कुछ दिनों बाद उत्तर से बाढ़ की एक हहराती हुई लहर समू... भारत को निगल गई। हिन्दू राजे-महाराजे यवन-आक्रमण के ह... जित हुए और अपनी जान बचाने के लिए देश छोड़कर भाग

लेकिन उनके सामन्तों और आश्रितों पर भयंकर आफत आ पड़ी। उन लोगों को तो भागने का भी मौका नहीं मिला। जो लोग बेतिया में पड़े रह गए, उनमें से कुछ लोगों ने आत्महत्या कर ली और अधिकतर लोगों ने अपना धर्म बदल डाला।

खैर, ये सब इतिहास की बातें हैं। मैं जिन्दगी के मामले में इतिहास के बखेड़े उठाकर कोई परेशानी मोल नहीं लेना चाहता। वैसे भी, अगर मैं बुद्धि लगाने को राजी होता तो शायद आज कुछ और होता। तुम लोगों की तरह मैं भी लिखना-पढ़ना सीखकर किसी व्यापारिक फर्म में चाकरी करता। मैं भी किसी तरह मर-खपकर सिर्फ दो-तीन हजार रुपल्ली महीने में ही सन्तोष कर लेता। लेकिन क्या उतने से मेरा पेट भर जाता? आज मेरा जो स्टैंडर्ड है वह होता? अरे, तीन हजार रुपये तो मेरे घर का खुदरा खर्च है!

खैर, छोड़ यार, हां तो मैं तुझे इतिहास का किस्सा सुना रहा था। अगर मुझे मूर्तियों की जरूरत न होती"'तो मुझे इस इतिहास-ज्ञान से कोई वास्ता नहीं था। लेकिन जब इतने लोगों के मुंह से एक ही बात बार-बार सुनी, तो मैंने फौरन अन्दाज लगा लिया कि इन गांव में काफी मूर्तियां मिल सकती हैं।

वहीं के लोगों ने बताया कि सैकड़ों साल पहले यहां एक भयंकर भूकम्प आया था। उस भूकम्प में समूचा गांव ही तहस-नहस हो गया था। उन दिनों यहां मुसलमानों का राज्य था। भूकम्प की वजह से एक ओर तो मन्दिर-मठ वगैरह ध्वंस हो गए, दूसरी तरफ मुसलमान नवाब-बादशाहों के नवनिर्मित राजमहल और मस्जिद वगैरह भी टूट-फूटकर खाक में मिल गए।

युगों के अन्तराल के बाद उसी प्राचीन ध्वंसस्तूपों पर फिर एक नये जनपद ने जन्म लिया। नई-नई बस्तियां बस गईं। एक बार फिर नये सिरे से पेड़-पौधे, बाग-बगीचे लहलहा उठे। इन्सानों के आवागमन के साथ ही साथ यहां बाजार, व्यवसाय, लेन-देन का सिलसिला दुबारा शुरू हो गया।

उन्हीं दिनों मेरे मालिक के पुरखों ने बेतिया में यह बंगला खरीदा

उनका इरादा था कि वे कभी-कभार यहां आकर आराम किया। शहर से दूर आकर दुनिया भर के झंझट-झमेलों को कम से कम कुछ दिनों के लिए तो भूल सकेंगे।

उसके बाद जो होना चाहिए था वही हुआ। धीरे-धीरे उनका आना बिल्कुल बन्द हो गया। लखनऊ इतना बड़ा शहर! उसे छोड़कर कोई यहां क्यों आएगा? अरे, शहर में जो मौजा-मज़ा है, यहां उसका शतांश भी क्या सम्भव है? इसीलिए मालिक लोगों ने यहां एक माली रख दिया और इस तरह अपनी सम्पत्ति के प्रति अपनी ज़िम्मेदारी निभाते रहे।

वैसे, वहां क्या है, क्या नहीं है—उन लोगों ने तो इस खोज-खबर की ज़िम्मेदारी से भी मुक्ति पा ली थी।

इसी घटना-चक्र में मैं इस बंगले का केयर-टेकर नियुक्त किया गया।

एक दिन मैं घूमते-घूमते गांव के बिल्कुल अन्तिम छोर तक जा पहुंचा। पास ही कहीं-से कांसे के घण्टों की आवाज़ सुनाई दे रही थी। मैं समझ गया कि आस-पास ही कहीं मन्दिर होगा। मैं पैदल ही वहां तक पहुंच गया। एक जीर्ण-शीर्ण मन्दिर। वहां एक पुरोहित जी खड़े-खड़े पूजा कर रहे थे। पुरोहित जी काफी बूढ़े लग रहे थे। दूसरा आदमी उनकी बगल में खड़ा-खड़ा शंख बजा रहा था। एक और आदमी घण्टा और एक अन्य करताल बजा रहा था। पुरोहित जी के अलावा बाकी लोग काफी कम उम्र के जान पड़े। मन्दिर के प्रांगण में जो लोग आरती देख रहे वे लोग भक्ति-भाव से हाथ जोड़े खड़े थे।

उन लोगों की देखा-देखी मैं भी हाथ जोड़कर आरती देखता रहा। पूजा समाप्त होते ही सबने ज़मीन पर सिर टेककर प्रणाम किया। लोगों की तरह मैंने भी ज़मीन पर माथा टेक दिया।

जब मैंने सिर उठाकर देखा तो ज़्यादातर लोग वहां से जा चुके आखिर एक आदमी ने मुझसे पूछ ही लिया, "आपको तो यहां कभी नहीं देखा। आपकी तारीफ?"

वह आदमी हिन्दी बोल रहा था।

मैंने अपना पूरा परिचय दे डाला। उस आदमी ने मेरी भाषा सुनकर पूछा, "आप शायद बंगाली हैं ?"

मेरी भाषा सुनकर उसको कौतूहल हो आया। उसने मेरे प्रति जरा सम्मान दिखाते हुए कहा, "बीच-बीच में इधर आ जाया करो, बाबूजी ! मन्दिर पाँच सौ बरस पुराना है। इहां जब हिन्दू राजा लोग थे, तब उनका टैम में ही ई मन्दिर बना रहा ! लेकिन अब रुपया-पइसा के अभाव में मन्दिर का ठीक तरह मरम्मत भी नहीं हो पा रहा है। हमही लोग, कउनो तरह, बस, पूजा-आरती निभाए जाय रहे हैं।"

मौका देखकर मैंने एक काम कर डाला। अपने कुर्ते की जेब से एक रुपये का नोट निकालकर पूजा की थाली में लापरवाही से डाल दिया।

उस आदमी की निगाहों से यह बात छुपी नहीं रही।

उस आदमी के अलावा और भी दो-चार लोगों की निगाहें उस तरफ उठ गई। शायद वे लोग आश्चर्य में पड़ गए थे। पूरा एक रुपया चढ़ा देना उनके लिए अचम्भे की बात थी। दो-एक पैसे चढ़ानेवाले भक्त तो सभी थे। इसके अलावा वे लोग ठहरे गांव के बाशिन्दे ! प्रायः सभी गरीब थे। बिचारे गरीब किसान-खेतिहर चढ़ावे में इससे अधिक देते भी कहां से ? बहुत हुआ तो वे लोग कभी-कभार पेड़ के फल-मूल भी चढ़ा जाते थे। अब पुजारी जी ने भी कहा, "जब भी फुरसत हो, इधर चले आना, बाबूजी ! यह जगह बहुत दूर तो नहीं है।"

"हां-हां, जरूर आऊंगा।"

उसी दिन मैंने इतना ही कहकर विदा ली। लेकिन मन ही मन भयंकर लोभ जाग उठा। लौटते हुए मैंने उन मूर्तियों की ओर भरपूर नजर से देखा।

उस मन्दिर में मुख्य रूप से शिव की मूर्ति ही प्रतिष्ठित थी। समूची मूर्ति काले संगमरमर के पत्थरों से गढ़ी हुई। लगभग चार हाथ लम्बी। अगल-बगल दो अन्य मूर्तियां। गणेश और पार्वती की। वे दोनों भी संगमरमर-निर्मित थीं।

मुझे वहां जाते हुए कई दिन हो गए थे। एक दिन मैंने सुना कि उस

मन्दिर में और भी दो-एक मूर्तियां थीं। किसीको भी नहीं मालूम था कि वे सब किन-किन देवी-देवताओं की थीं। उनके लिए वेदियां भी बनी हुई थीं।

मैंने पूछा, "इन जगहों की मूर्तियां कहां गईं ?"

पुरोहित जी ने बताया, "सुनने में आता है कि बहुत सालों पहले यहां एक भूकम्प आया था। उसी धक्के में पुराना मन्दिर भहराकर गिर पड़ा। उस समय गांववाले गांव छोड़कर भाग गये थे। यहां की पूजा भी बन्द हो गई थी। खैर, उस समय हमारा जन्म भी नहीं हुआ था।"

यह किस्सा सुनकर मेरे मन में कौतूहल जाग उठा। मैंने फौरन जानना चाहा, "उसके बाद क्या हुआ ?"

"और क्या होता ? हमने उस भूकम्प की कहानी भर सुनी है, अपनी आंखों से किसीने नहीं देखा। सुना है, उसी भूकम्प की वजह से भयानक बाढ़ भी आ गई थी। नदी की धार अपने साथ घर-मकान, गाय-बछड़े सब कुछ बहा ले गई थी। उस वक्त यह मन्दिर भी नदी में डूब गया था। कुछ दिनों बाद, जब पानी घटा, तब पता चला कि काफी लोगों की जानें गई हैं, बहुत सारे मकान ढह गए, खेतों की फसलें बर्बाद हो गईं। इसके अलावा मन्दिर की कई मूर्तियां भी लापता हो गईं।

"काफी दिनों बाद जब गांव के लोग अपनी-अपनी जगह वापस लौट आए, तो दुबारा नये सिरे से घर-मकान बन गए। धीरे-धीरे जब लोगों की स्थिति ज़रा सुधरी तो मन्दिर की मरम्मत पर हाथ लगाया गया। खोई हुई मूर्तियों की भी खोज की गई। जो मिलीं, उनकी पुनः प्रतिष्ठा की गई। जो नहीं मिलीं, यह समझ लिया गया कि मिट्टी के नीचे दब गईं। अब उनका उद्धार कभी सम्भव नहीं।"

खैर, यह सब भी काफी पहले की घटना है। बहुत दिनों पहले की। जब ये लोग पैदा भी नहीं हुए थे।

अब मैंने उन लोगों से जी खोलकर मिलना शुरू कर दिया था। हालांकि मेरा मन उसी गणेशजी की मूर्ति में ही अटका हुआ था।

इसी बीच साहब और मेमसाहब मेरे यहां एक और चक्कर लगा गए। पहले भी वह कई बार आकर मुझसे दरियाफ्त कर गए थे, "क्या हुआ, कुछ मिला ?"

मैंने कहा, "लगता है जल्दी ही कुछ मिलनेवाला है।"

साहब को जैसे थोड़ी आशा बंधी। उसने मेरी ओर सिगरेट बढ़ाते हुए कहा, "लो, पीओ ! सिगरेट पीओ।"

मैं बेहिचक सिगरेट के कश लगाने लगा। आखिर क्यों न लगाता ? बिना दाम-कौड़ी खर्च किए सिगरेट तो क्या अगर शराब भी मिलती तो मैं चढ़ा जाता। हालांकि अब मैं सिर्फ अपने ही पैसों की शराब पीता हूं। अब शराब पीते हुए मुझे खास बुरा नहीं लगता, क्योंकि अब मेरे पास इतना-इतना रुपया है कि अगर मैं इसे शराब में न उड़ाऊं तो इतने रुपयों का आखिर मैं करूंगा भी क्या ? अब तो मुझे खाने के लिए दाल-भात-रोटी न भी मिले तो मैं काम चला लूंगा। लेकिन शराब मुझे हर हाल में चाहिए। अभी-अभी मैंने तुझे दिखाया न, मेरे सूटकेस में कितनी सारी बोतलें भरी हैं।

लेकिन तुम लोगों ने जो मुझे इतने दिनों कोई तरह नहीं दी थी, यह बात मुझे आज भी चुभती है। कभी मैं तुम सबकी निगाह में कितना छोटा था, यह बात मैं आज भी नहीं भुला पाया। उन दिनों तुम लोग मुझसे नफरत करते थे। शायद इसीलिए आज मैं तुम सबको मात देकर शान से सिर उठाए खड़ा हो सका हूं। शायद ऐसा ही होता है। सारे संसार का शायद यही नियम है !

इसीलिए, बन्धु, मैं तुम सबका कृतज्ञ हूं। तुम लोग बचपन में अगर मुझे प्यार देते, मेरी तारीफें करते, तो शायद मैं भी तुम लोगों की तरह हमेशा के लिए बौना ही हो जाता। पहले मुझे मन ही मन तुम सबके प्रति गहरा क्षोभ था। मेरा ख्याल था, तुम लोग बेहद ईर्ष्यालु और हीन भावना से ग्रस्त हो। अहंकारी भी हो, इसीलिए मेरा भला नहीं चाहते।

लेकिन अब बात उल्टी हो गई है। अब मैं सोचता हूं कि यह भाग्य की बात थी कि तुम लोग अपने को बड़ा मानकर मुझे हमेशा छोटा साबित

करने की कोशिश में लगे रहे। तभी आज मैं इतना बड़ा बन सका। वर्ना मैं भी तुम लोगों की तरह बौना ही रह जाता। मैं भी दो-तीन हज़ार रुपयों की नौकरी के बल पर समूची दुनिया को सिर पर उठा लेता।

मुझे एक बात और कहनी है—तुम लोग जिन्दगी की नाप-जोख महज रुपयों से ही करते हो न ! अच्छा, चलो, तुम्हीं बताओ, तुम लोग ऐसा करते हो या नहीं ? रुपया ही तुम लोगों के लिए सब कुछ है न ? रुपयों से ही तो तुम लोग छोटे-बड़ों का विचार करते हो ? बचपन में जब तुम लोगों की लन्तरानियां सुना करता था, तो मन ही मन सोचा करता था, ये लोग आखिर क्या हैं ? सब के सब महज भिखारी ! जिसके पास बेशुमार दौलत है, तुम सब उसे देवता मानकर पूजने लगते हो।

वैसे भिखमंगों में भी स्तर-भेद होता है। मतलब, गरीब भिखारी; मध्यवित्त भिखारी; अमीर भिखारी। कुछ भिखमंगे सिर्फ चावल और पैसों की भीख मांगते हैं और कुछ लोग परमिट व लाइसेंस के लिए हाथ फैलाते हैं। उन दिनों तुम लोगों को इन बातों का ज्ञान नहीं था, लेकिन मैं सब समझता था।

ये सब फर्क मैंने अपनी आंखों से देखा है। मैंने गौर किया, हमारी क्लास में ही जो अमीर लड़के थे, सबके सब उनकी खुशामद में लगे रहते थे। दरअसल तुम लोग उनकी सूरत-शक्ल पर नहीं मरते थे बल्कि उनके अमीर बापों की अथाह दौलत की वजह से उनके तलुए सहलाते थे। यह सच है कि वे लोग तुम्हें अपना रुपया उठाकर नहीं दे देते थे, न तुम लोग ही उनसे रुपये पाने या भरपेट खाने की उम्मीद करते थे। तुम लोग तो महज इस गर्व में फूले नहीं समाते थे कि ऐसे-ऐसे अमीरों से तुम लोगों की मेल-मुलाकात है। तुम लोग तो उनके इर्द-गिर्द चक्कर लगाकर ही खुशी से अभिभूत हो उठते थे। उन लोगों के रुपयों की खुशबू ही तुम सबको परम-मधुर लगती थी। यानी तुम लोग रुपयों के इस कदर लालची थे। हां, यार, यह सब मैं चुपचाप देखता-सुनता रहता था। मैं बेहद गरीब आदमी का बेटा था। तुम सभी जानते थे

कि मेरे बाप के पास फूटी कौड़ी भी नहीं है।

जिसके बाप के पास दौलत न हो; वह लिखने-पढ़ने में होशियार हो या गवार; बराबर है। हां, मैंने देखा है, जिन्दगी में सिर्फ वही तरक्की कर पाते हैं जिनके बाप के पास बेशुमार दौलत हो। जो लोग सिर्फ लिखने-पढ़ने में होशियार हैं, वे लोग जीवन की लड़ाई में बस किसी तरह टिके हुए हैं। बस, इतना भर ही!

लेकिन दुनिया में सिर्फ पांव टिकाकर खड़े होना कोई नहीं चाहता। कहने को तो यहां छिपकली भी टिकी हुई है और बाघ भी। तुम लोगों ने हमेशा बाघ की तरह पैर जमाने की कोशिश की। तुम लोगों का ख्याल था, बाघ की तरह जिन्दा रहने के लिए पिता का बैंक-बैलेंस तगड़ा होना चाहिए। शायद तुम लोग सोचते थे, पिता की दौलत न हो तो शिक्षा की हजारों डिग्रियों के बावजूद छिपकली बने रहने के अलावा और कोई गति नहीं है, और तुम लोग जिन्दगी-भर छिपकली ही बने रहे। चूंकि तुम लोगों ने खुद बाघ बनने की उम्मीद छोड़ दी थी, अतः उन बाघों से ही मेल-जोल बढ़ाकर अपने को भी बाघ साबित करने की कोशिश करते रहे।

लेकिन, भइया, मैं तो हमेशा से ही छिपकली था। मेरे मां-बाप, चाचा, ताऊ—मेरे चौदहों पुश्त महज छिपकली के वंशज थे।

लेकिन इस सच को स्वीकार करने में मुझे तुम लोगों की तरह शर्म नहीं आती थी। मैं तो बेहद गौरव के साथ अपने परिचय की घोषणा करना चाहता था। तुम लोगों ने मुझे हमेशा यही सीख दी कि इन्सान महज छिपकली के अलावा और कुछ नहीं है; लेकिन दुनियावालों के सामने अपने को बाघ के रूप में प्रचारित करना बेहद जरूरी है। अपने पल्ले एक कौड़ी भी न हो, लेकिन अमीर बनने का ढोंग जरूरी है। जबकि एक जून खाना भी नसीब न हो, तब भी पान खाकर मुंह रंगाए हुए, भरपेट खाने का ढोंग रचना जरूरी है। तुम लोग समझते थे कि यही दुनिया की रीति है। तुम लोग ही कहा करते थे कि जो वर्तमान युग के साथ कदम मिलाकर नहीं चलेगा, वह उसके तेज बहाव में सूखे-जर्जर पत्ते की तरह बह जाएगा।

दरअसल, यहीं मेरा तुम सबसे विरोध था।

मेरा स्वभाव कुछ और था और तुम लोग थे मुझसे बिल्कुल विपरीत।

मेरा कहना था, "मैं युग के साथ कदम मिलाकर क्यों चलूं? युग ही हमारे कदम से कदम मिलाकर चलेगा।"

तुम लोग कहते थे, "तब तू युग के तेज बहाव में डूब जाएगा।"

हालांकि मैं तुम लोगों की बात का कोई उत्तर नहीं देता था, लेकिन मन ही मन फैसला कर चुका था कि अगर मैं डूब भी जाऊं तो भी मंजूर है। कम से कम मेरा आदर्श तो बच जाएगा।

लेकिन सवाल यह है कि आदर्श बड़ा है या पैर जमाकर टिके रहना?

हम लोग अक्सर इस टिके रहने के सन्दर्भ में ही गलती कर बैठते हैं। तुम लोग पैर जमाने के लिए दौलत को ही सबसे बड़ा मानते हो। चांदी के चंद सिक्कों के लिए नकली को असली कहने में भी तुम लोगों को कोई एतराज नहीं है। तुम लोग जिन्दगी में सिर्फ एक ही चीज को पहचानते हो—वह है रुपया! सिर्फ तुम ही क्यों, दुनिया के तमाम लोग इसी नशे के दीवाने बन बैठे हैं। लेकिन मेरा स्वभाव बचपन से ही तुम सबसे अलग था। मेरे कपड़े-लत्ते भी तुम लोगों की तरह न बेशकीमती थे, न उजले-धुले। ऐसा भी नहीं था कि मैं चाहता तो वैसे कपड़े-लत्ते खरीद नहीं सकता था। लेकिन मेरे मन में वैसी कोई इच्छा ही नहीं जागी।

अच्छा, क्या यह जरूरी है कि इन्सान को सिर्फ उसके कपड़े-लत्ते से ही परखा जाए? इसका मतलब तो यह हुआ कि अगर किसी बन्दर को कीमती सूट पहना दिया जाए तो तुम सब उसके आगे भी भक्ति-भाव से सिर झुकाने लगोगे?

हां, तुम लोगों के तौर-तरीके देखकर मुझे खुद अपने से भी नफरत होने लगी थी।

मैंने फैसला कर लिया, जब इस युग में पैदा हुआ हूं तो जमाने के साथ कदम मिलाकर चलूंगा। आज से मैं भी तुम लोगों की तरह सिर्फ दौलत की ही पूजा करूंगा। औरों की तरह मैं भी भगवान के पंडों की

ज़ाहिर करूंगा और यह दिखा दूंगा कि मैं तुम लोगों को और-और तरीकों से भी हरा सकता हूं। हां, मैं तुम लोगों के आगे यह साबित कर दूंगा कि दुनिया में अगर रुपया ही असली चीज़ है, तो उसे भी हासिल करना कोई मुश्किल काम नहीं है। दुनिया में और कोई न सही, लेकिन तुम लोग यानी दुनिया के निन्यानवे प्रतिशत लोग तो मुझे शाबाशी देंगे।

अतः मेरे भाई, मैं भी उसी दिन से साधना में जुट गया। सुना है, अगर साधना सच्ची हो तो एक न एक दिन इन्सान जरूर तरक्की करता है।

अगर मुझे तुम लोग जैसे यार-दोस्त न मिले होते, तो शायद मैं किसी और साधना में मन लगाता, लेकिन तुम लोगों की वजह से मैंने यही साधना शुरू कर दी। उस साधना में मेरी हार हुई है या जीत, यह तू खुद ही समझ गया होगा।

मैंने दुबारा बात शुरू की, "अब तुम असली घटना बताओ न! मुझे तुम्हारे भाषण में कोई दिलचस्पी नहीं है।"

तापस ने एक और सिगरेट सुलगा ली, और सिगरेट का एक लम्बा कश छोड़ते हुए कहा, "तू जिसे भाषण समझ रहा है, दरअसल यह भाषण नहीं है; रे! इसे अभिज्ञता कहते हैं। मैंने अपनी ज़िन्दगी में जो अनुभव बटोरे हैं; उनके सारे निचोड़ के रूप में ये बातें तुझे बता रहा हूं, दोस्त! मैंने अच्छा किया या बुरा, यह भी मन ही मन तौलता रहा हूं। हां, यह बात मुझे चुभती रही है कि मैं क्या बनना चाहता था और क्या बन गया? लेकिन इसके लिए आखिर कौन लोग जिम्मेवार हैं?"

"हालांकि, ये बातें मुझे हर वक्त नहीं कुरेदतीं क्योंकि इतना कुछ याद करने के लिए मेरे पास वक्त कहां है? आदमी के पास जैसे-जैसे रुपया बढ़ता जाता है उसके काम का वक्त धीरे-धीरे कम होता जाता है। उसके बाद उसका सारा वक्त आलतू-फालतू कामों में ही तबाह

होने लगता है। अतः अब मेरा भी अधिकांश समय फालतू कामों में ही बर्बाद होता है, दोस्त।"

मैंने पूछा, "फालतू काम का मतलब ?"

तापस ने बताया—

फालतू काम का मतलब है वही चिट्ठी-पत्री ! इन्कम-टैक्स ! लोगों से मेल-मुलाकात ! अरे भाई, जैसे ही तुम्हारे पास धन आएगा, लोग तुम्हारे पास दौड़े आएंगे। तुमसे जान-पहचान उनके लिए परम गौरव की बात होगी। तुम उनसे दो-चार बातें करके, हेल-मेल बढ़ाकर उन्हें धन्य-धन्य कर दोगे। लेकिन इसमें तुम्हारा काफी सारा वक्त नष्ट हो जाएगा। इसीलिए मैं इन्हें बिल्कुल फालतू काम मानता हूं। अमीर बनने के बाद तुम्हें दुनिया-भर के लोगों के शादी-ब्याह, अन्नप्राशन, श्राद्ध में शामिल होना होगा। उनके साथ फोटो भी खिंचवानी होगी। यह सब फालतू काम नहीं तो और क्या है ?

लेकिन दोस्त, अपने बिछाए हुए जाल में अब मैं खुद ही फंस गया हूं। एक दिन था जब मैं खुद ही बेशुमार दौलत कमाने के सपने देखता था, ताकि अमीर बनकर मैं तुम सबके सर पर सवार हो सकूं। अब जब मैं सचमुच रईस बन गया हूं तो और अधिक रुपये कमाना मेरे लिए मुश्किल हो गया है। अब तो कोई मुझे रुपये कमाने की फुरसत ही नहीं देता। अब तो हर कोई मुझसे मेल-मिलाप बढ़ाकर मेरे साथ डिनर-लंच खाने को उतावला है। सभी लोग मुझे अपने यहां खाने की दावत देना चाहते हैं। बस एक ही चीज़ मुझे कोई नहीं देता—वह है समय। मैं इस समय को लेकर ही महा-समस्या में पड़ गया हूं···

खैर, छोड़ो ! तुम्हें असली घटना सुनाऊं।

उस दिन भी मैं यथारीति विम्बवती यानी बेतिया घूमने गया था। वहां जाकर देखा काफी लोगों की भीड़ जमा है। उस दिन शायद समूचा गांव ही वहां उमड़ आया था।

और दिनों तो इस वक्त तक देव-पूजा शुरू हो जाती थी। आरती भी शुरू हो जाती थी। लेकिन उस दिन सब बन्द था। पता चला मन्दिर में चोरी हो गई है।

मैं भचरज मे पड़ गया। मैंने पूछा, "क्या चीज चोरी गई है?"

पुरोहित जी की भांखों से धार-धार भांसू बह रहे थे। उन्होंने कहा, "यहां भाकर देखो, क्या हुआ है?"

वे मुझे मन्दिर के भन्दर लिवा ले गए।

मैंने देखा मन्दिर के कोने मे सेंघ लगाई गई थी। उस सेंघ से भन्दर घुसकर कोई मन्दिर की दो मूर्तियां चुरा ले गया था।

मैंने देखा शिव के भगल-बगलवाली मूर्तियां गायब थीं। यानी गणेश भौर पार्वती की मूर्ति! जिस जगह वे मूर्तियां प्रस्थापित थी वहां की ईंटें तक टूटी पड़ी थी।

जाहिर था कि जिसने भी चोरी की थी, वह शातिर चोर था। मैंने पूछा, "लेकिन यह चोरी हुई किस वक्त? कल तो घनघोर बारिश हो रही थी···"

बेतिया गाव के ही किसी निवासी की तरफ से उत्तर मिला, "हां, इसी बारिश की वजह से ही तो हम लोग बाहर नहीं निकले। हम सब भपने-भपने घरों का दरवाजा भन्दर से बन्द करके सो गए थे। इसी बीच चोर ने कब सेंघ काटी, पता ही नही चला।"

हां, वाकई बरसात की तेज बूंदों के शोर मे भला भौर कोई भावाज सुनाई दे सकती थी?

मैंने पूछा, "फिर क्या हुआ? तुम लोगों को पता कैसे चला?"

सबने एक स्वर मे कहा, "उसके बाद की घटना के बारे में हम लोगों को कुछ नही मालूम। भसल मे बरसात के दिनो में हमारा काम बहुत बढ जाता है। हम लोगो का ज्यादातर वक्त खेत-खलिहानो में ही बीतता है। हम लोग भी पांच बजे ही भपने-भपने खेतो मे पहुच जाते हैं भौर घर लौटते-लौटते प्रायः शाम हो जाती है। हम लोग खापीकर फौरन सोने चले जाते हैं। बिल्कुल मुर्दों की तरह सोते हैं। घर का सारा काम मा-बहन-बीवियों के जिम्मे है। सो, हम लोगों को चोरों के बारे में कैसे पता चलता?"

खैर, मैं क्या कर सकता था? मेरे लिए कहने को भी क्या था? बस, मेरी भांखें यूं छलछला भाईं कि भब रोईं तब रोईं।

मैंने दरियाफ्त किया, "आप लोगों ने पुलिस में सूचना दी है ?"

सबने कहा, "जी हां, हम लोगों ने पुलिस में सूचना दे दी। पुलिस आई भी थी। रिपोर्ट-विपोर्ट लिखकर ले गई है…"

मैंने कहा, "पुलिस का कोई विश्वास नहीं। उन्हें तो बीच-बीच में खोंचा मारना जरूरी है, तब जाकर वे काम करते हैं। वर्ना रिपोर्ट ज्यों की त्यों पड़ी रहेगी। भई,'गरीबों के लिए पुलिस भी नहीं होती…"

मेरी बात पर लोगों को अक्षरशः विश्वास हो गया। किसीने कोई प्रतिवाद नहीं किया। सब आपस में आगामी कार्यक्रम के बारे में सलाह-मशविरा करने लगे। मन्दिर की छत पर ही सभा बैठी। गांव के सभी लोग वहां इकट्ठे हुए। वाकई, यह घटना नजरअन्दाज़ करने लायक थी भी नहीं। आखिर कुछ न कुछ तो करना ही था।

लेकिन कोई भी यह नहीं बता पाया कि क्या करना होगा। जो घटना घटी है, उसका प्रतिकार क्या होगा ?

हां, एक उपाय हो सकता था। अबसे मन्दिर पर पहरा बिठा दिया जाय। पुरोहित जी के रहने-सहने का इन्तज़ाम भी मन्दिर के आस-पास ही कर दिया जाए। गांववाले ही उनके लिए घर बनवा देंगे। अगर मन्दिर के आस-पास लोगों की घनी आबादी हो तो मन्दिर से मूर्तियां चोरी जाने का डर नहीं रहता।

लेकिन घर-द्वार बनाने के लिए रुपये की भी तो ज़रूरत पड़ती ? मैंने कहा, "हम सभी भक्त मिल-जुलकर चन्दा उठाएंगे। जनता के रुपयों से पुरोहित जी का घर बनेगा। चलो, सबसे पहले मैं ही अपनी तरफ से सौ रुपये देता हूं…"

लोग मेरी अगाध भक्ति देखकर चकित रह गए। यह बात अधिकांश लोगों की कल्पना के बाहर थी कि मैं अपनी जेब से एकदम से सौ रुपये निकालकर दे सकता हूं।

व्यक्ति देखकर उनकी जुबान ही नहीं खुल पाई। मेरी तरफ वे लोग मुंह बाए देखते रहे।

मेरी देखा-देखी कई और लोगों ने भी चन्दा देने का वादा किया। किसीने पांच रुपये दिए, किसीने एक रुपया। किसीने आठ ही आना। सबने अपनी-अपनी सामर्थ्य के अनुसार चन्दा देने का वादा किया।

मैंने कहा, "हां, पहले भगवान! उसके बाद रुपया-पैसा!"

मेरी बातों पर शायद तुझे हंसी आ रही होगी। लेकिन यह सबक तो मैंने तुम्हीं लोगों से सीखा था। अब मैं कोई और ही आदमी बन गया था। उन दिनों मैं रुपये को ही जिन्दगी में सर्वाधिक महत्व दे बैठा था।

मैंने बीच में ही टोककर पूछा, "यानी अब तू भगवान को नहीं मानता?"

तापस ने कहा, "धत्! भगवान और कुछ नहीं इन्सान के मन की महज कल्पना है, रे! दुनिया में आज भी जो हम लोग भगवान का नाम बचाए हुए हैं, वह गरीबों की आंखों में धूल झोंकने के लिए है। वैसे मैं यह भी जानता हूं कि दुनिया में मुझसे बड़ा ठगबाज और कोई नहीं है।"

"तू ठगबाज है?"

"क्यों, मैं ठगबाज नहीं हूं? तू यह क्या कह रहा है? अगर मैं ठगबाज न होता, तो इतना बड़ा अमीर कैसे बन पाता? अरे भाई, आजकल सीधी राह से कोई भला अमीर बन सकता है?"

मैं खामोश हो गया। लेकिन थोड़ी देर बाद मैंने दुबारा पूछा, "हां, तो उसके बाद क्या हुआ?"

तापस ने कहा, "अगले दिन मैं अपने वादे के अनुसार उनके हाथ पर सौ रुपये का एक और नोट रख आया।"

"यानी पत्थर की मूर्तियों के लिए तूने सचमुच सौ रुपये दे डाले?"

"देता कैसे नहीं? मैंने उन्हें सौ रुपये देने का वादा जो किया था।"

"उन दिनों ठाकुर-देवताओं पर तेरी सचमुच इतनी भक्ति थी?"

"अरे, धत्! मैंने रुपये क्या अपनी जेब से दिए थे? मुझे वह अंग्रेज साहब दो सौ रुपये एडवान्स नहीं दे गया था?"

"तूने क्या उन्हीं रुपयों में से सौ रुपये निकालकर दे दिए ?"

"मैं क्यों देने लगा ? अगले दिन साहब ने मुझे उन दोनों मूर्तियों के लिए साढ़े पांच हज़ार रुपये नकद दिए थे।"

"इसका मतलब ?" मैं चौंक उठा, "यानी तूने ही मन्दिर में सेंध लगाकर मूर्तियां चुराई थीं।"

तापस ने ठहाका लगाते हुए कहा—

देखता हूं, तेरी बुद्धि मोटी की मोटी ही रह गई। हां, मैंने ही तो वे मूर्तियां चुराई थीं। पिछली रात मूसलाधार बारिश हुई थी न! मैंने मन ही मन सोचा, ये अच्छा मौका है। मुमकिन है ऐसा सुनहला मौका शायद फिर कभी हाथ न लगे। अतः मैं उसी रात फावड़ा लेकर निकल पड़ा। उस मन्दिर का चप्पा-चप्पा मेरा जाना-पहचाना था। मैंने यह भी पता लगा लिया था कि मन्दिर का कौन-सा हिस्सा कमजोर है। इसके पहले मैं ही हर रात आरती के समय भीतर की ईंटें हिला-डुलाकर खिसका आता था। मैं चुपचाप बालू-विहीन दीवारों को खुरच-खुरचकर वहां की ईंटों को धसका देता था। मैं तो वहां की गंथाई तक हिला आया था। मन्दिर की उस खास जगह को मैंने बर्तन-बासन, गुप्त-दान के बक्स-वगैरह से ढंक दिया था। उसके आगे लकड़ी का एक सन्दूक भी लगा आया था ताकि वह जगह पूरी तरह ढंकी रहे। ऐसी हालत में मूर्तियां चुराना मेरे लिए कोई मुश्किल काम नहीं था।

अगले दिन शाम होते न होते साहब भी आ पहुंचा। उस दिन भी मेमसाहब उसके साथ आई थी।

साहब ने पूछा, "क्यों, अदर ? कोई सुराग मिला ?"

"हां, मिला है।"

साहब खिल गया, "क्या सच ? कुछ पता चला है ? क्या मिला ?"

"दो मूर्तियां मिली हैं। एक पार्वती की मूर्ति, दूसरी गणेश की।"

साहब एकदम से उछल पड़ा, "कहां है ?"

"आओ, आओ, तुम लोग अन्दर तो आओ।"

मैं उन दोनों को अन्दर लिवा लाया। मेरी कोठरी काफी छोटी थी। सिर्फ एक आदमी के रहने लायक जगह। लेकिन उसके पास ही थोड़ी-सी खाली जगह भी थी, जहां मैं रसोई बनाता था। उसे चारों तरफ से घेर कर मैंने वहां एक कमरा बना लिया था।

मैंने मूर्तियां कुछ इस ढंग से रखी थीं ताकि उन्हें बाहर से कोई न देख पाए।

उस जगह रसोई की लकड़ियां रखी रहती थीं। उन दोनों मूर्तियों को मैंने वहीं लकड़ी से ढंक दिया था। बाहर से देखकर लगता था, मानो वहां लकड़ी का गोदाम हो। भीतर से दो मूर्तियां निकल आईं।

वे दोनों मूर्तियां देखकर साहब और मेमसाहब की आंखें खुशी से चमक उठीं। वे दोनों मूर्तियों पर यूं हाथ फेरने लगे, मानो उन्हें प्यार कर रहे हों।

साहब ने पूछा, "कहां से मिली ?"

"बगान खोदते-खोदते तो मैं तंग आ गया था···"

मेमसाहब भी अवाक् हो उठीं। उन्होंने पूछा, "ये मूर्तियां क्या इसी बाग से मिली हैं ?"

"हां, यहीं तो बगान में ही, लेकिन काफी खोदा-खादी के बाद जाकर मिली हैं। मिट्टी खोदते-खोदते मेरा तो अंग-अंग दर्द करने लगा है।"

साहब ने भी सहमति जताई कि बदन दर्द करना तो स्वाभाविक है। वे समझ गए कि इस काम के लिए मुझे सच ही बहुत परेशान होना पड़ा है।

उन्होंने पूछा, "अब बताओ, कितना लोगे ?"

मैं मुश्किल में पड़ गया। कितना मांगा जाए ? मैंने कहा, "भूतचन्द जी भी मेरे यहां चक्कर लगा गए हैं—।"

भूतचन्द का नाम सुनते ही साहब का चेहरा गम्भीर हो उठा। अचानक वह भूतचन्द को अंग्रेजी में ऐसी-ऐसी गालियां देने लगा, जिन्हें सुनकर शर्म से कान लाल हो उठें।

उसने छूटते ही पूछा, "कुछ एडवान्स भी दे गया है ?"

मैं झूठ बोल गया, "नहीं।"

मेरी बात सुनकर साहब और बिफर गया। मुझे समझ नहीं आया कि साहब का गुस्सा मुझ पर है या मूलचन्द पर। लेकिन मैं तो साहब और मूलचन्द दोनों से ही एडवान्स ले चुका था। वैसे एक ही चीज़ के लिए दो-दो लोगों से एडवान्स लेना जुर्म है।

मैंने कहा, "मैं एडवान्स लेना नहीं चाहता था लेकिन मूलचन्द जबर-दस्ती मेरे आगे रुपये फेंककर चला गया।"

मेमसाहब ने पूछा, "कितना रुपया दे गया है?"

इस बार भी मैं फिर झूठ बोल गया।

हां, एक ज़माना था, तुम लोगों की बातचीत, तौर-तरीका देख-सुनकर मुझे बेहद कोफ्त होती थी। तुम लोगों की बातों में मैंने कभी उत्साह नहीं दिखाया। मैं तुम लोगों के विचारों से भी कभी सहमत नहीं हुआ। लेकिन आज मैं स्वीकार करता हूं कि शायद तुम लोग ही ठीक थे और मैं गलत था। हां, जब सारी दुनिया तुम्हारे साथ है, तो दल त्यागकर यूं अकेले-अकेले तकलीफ सहना सचमुच बेमतलब है।

मैंने बताया, "मूलचन्द जी, मुझे एक हज़ार रुपया एडवान्स दे गए हैं।"

साहब का हाथ फौरन जेब में चला गया। उसने कहा, "हां, मैंने तुम्हें सिर्फ दो सौ रुपये ही एडवान्स दिए थे, लेकिन लो, आज पूरे पांच हज़ार रुपये दे रहा हूं। यानी उन दोनों मूर्तियों की पाई-पाई कीमत चुका रहा हूं।"

यह कहकर उसने सौ-सौ के पूरे पचास नोट गिन दिए।

मेरे मुंह से एकबारगी निकल गया, "पांच हज़ार!"

साहब ने बीच में ही बात काटकर कहा, "हां! पहले मेरी बात तो सुनो। ये रुपये अच्छी तरह गिन तो लो।"

मैं वे रुपये फिर से गिनने लगा। पूरे पांच हज़ार रुपये थे। मेरी उंगलियां कांप रही थीं। साहब की नज़रों से भी शायद यह बात छिपी नहीं थी।

उसने कहा, "लाओ, तुम्हारे सामने ही रुपये दुबारा गिन दूं।"

मैं मन ही मन विस्मित था, इतने सारे रुपये! इतने सारे रुपये

लेकर आखिर मैं करूंगा क्या ? इन्हें कहां रखूंगा ? मेरे पास तो सिर्फ एक सूटकेस-भर का आसरा-भरोसा है ।

साहब ने छूटते ही कहा, "क्या सोच रहे हो ? कम दाम मिले हैं ?" मैंने बेवकूफ की तरह सिर हिला दिया, "हां ऽ—।"

साहब का हाथ फौरन जेब में चला गया। उसने कुछ और नोट निकालकर सामने रख दिए, "ठीक है। ये लो पांच सौ रुपये और रखो…।"

मैंने हाथ बढ़ाकर वे रुपये भी समेट लिए। सच कहूं, उस वक्त मैं आपे में नहीं था। मेरे दोनों कान झनझना रहे थे।

साहब ने कहा, "ठीक है। अभी ये मूर्तियां अपने पास ही रहने दो। मैं बाद में आकर ले जाऊंगा…।"

लेकिन मेमसाहब शायद किसी दुविधा में पड़ी थी। उसने कहा, "लेकिन वह बगर[1] मूलचन्द अगर कहीं दुबारा आ धमके और ज्यादा रुपयों का लालच दिखाकर मूर्तियां लेकर चम्पत हो जाए, तब क्या होगा ?"

साहब ने कहा, "हां, यह बात भी है। सचमुच ये मूर्तियां अब यहां छोड़ी नहीं जा सकतीं। ठीक है, मैं यहीं रुक जाता हूं। ऐसा करो, तुम चली जाओ और रात को जीप ले आना और मुझे ले जाना।"

यह बात मेमसाहब को जंच गई। वह चली गई और साहब मेरे साथ ही रह गया।

कुछ देर बाद उसने अपने कन्धे से बैग उतारकर उसमें से गांजे की एक चिलम निकाली। मैं गांजे की चिलम देखकर भौंचक्का रह गया। मुझे घबराहट होने लगी कि साहब खुशी के मारे कहीं यहीं बैठकर गांजे की दम न लगाने लगे।

उसके बाद ही साहब एक और कांड कर बैठा। उसने अपनी जेब से एक बोतल निकालकर कहा, "आओ हम लोग 'सेलिब्रेट' करें। उठो, एक गिलास ले आओ।"

---

१. एक अमेरिकन स्लैंग जिसका अर्थ 'हरामखोर' या 'ठग' होता है।

साहब ने गिलास भरकर मेरी ओर खिसका दिया, "लो, पिओ !"

दोस्त, इससे पहले मैंने कभी शराब नहीं चखी थी; यह तो तुम लोग भी जानते हो। तुम लोग तो कभी-कभार चोरी-छुपे एकाध घूंट चढ़ा भी लेते थे। उस समय मुझसे भी पीने की ज़िद करते थे? तुम लोगों का कहना था, शराब पिए बिना माडर्न होना असम्भव है। जो लोग दकियानूस होते हैं, वही शराब को हाथ लगाना पाप समझते हैं। उन दिनों मैं तुम लोगों की बातों का सख्त विरोध करता था। लेकिन उस दिन दुविधाग्रस्त होते हुए भी, शराब का गिलास उठा ही लिया। वैसे पीने के पहले मन ही मन काफी डर भी लग रहा था। मुझे यही डर था कि नशे में लड़खड़ाकर कहीं गिर न पड़ूं। कहीं उल्टी न कर दूं···।

लेकिन, माई डियर, शराब पीकर मेरे दिल को बड़ी राहत मिली। मैंने पहली बार महसूस किया कि दुनिया में जीना कितना सुखद है! समूची धरती मानो स्वर्ग लगने लगी। स्वर्ग को कभी मैंने अपनी आंखों से नहीं देखा। स्वर्ग के बारे में केवल कल्पना-भर की थी। मुझे लगा, शराब पीकर मैं सशरीर उसी स्वर्गलोक में पहुंच गया हूं।

साहब ने पूछा, "और थोड़ी-सी लोगे?"

मैंने कहा, "लाओ, दो! गिलास भर दो, साहब! मुझे तुम्हारी यह चीज़ बहुत पसन्द आई है।"

इसके बाद साहब ढालता गया और मैं पीता गया। मुझे याद नहीं रहा कि मैं कितने गिलास चढ़ा चुका हूं। उसके बाद जाने कब घुत्त सो गया; इसका भी होश नहीं रहा। जब नींद टूटी तो चारों तरफ अंधेरा छा चुका था। शायद काफी रात हो गई थी।

मैं हड़बड़ाकर उठ बैठा। होश आते ही; सबसे पहले मुझे अपने साढ़े पांच हज़ार रुपयों का ख्याल आया। कहीं वह रुपये लेकर तो चम्पत नहीं हो गया?

नहीं! मैंने अपनी जेब टटोलकर देखा। बंडल में बंधे हुए रुपये बिल्कुल ठीक-ठीक थे, यानी गुम नहीं हुए थे।

मेरी निगाह साहब पर ठहर गई। वह बिल्कुल फिट बाबू बना गांजे की दम लगाए जा रहा था। उस वक्त उसे अपने आस-पास की दुनिया की कोई खबर नहीं थी।

मुझे जगा हुआ देखकर साहब ने पूछा, "क्यों ! नींद पूरी हुई ?"

मैंने कहा, "हां‧‧‧मेमसाहब कहां हैं ? अभी तक आईं नहीं ?"

साहब ने कहा, "नहीं, अभी उसके आने का समय नहीं हुआ। जरा और रात होने पर आएगी।"

ऐसा ही हुआ। रात क्रमशः गहरी हो आई। साहब गिलास पर गिलास चढ़ाता रहा। बीच-बीच में गांजे की दम भी लगाता रहा।

मैंने पूछा, "तुम्हें भूख नहीं लगी, साहब ?"

"हां, लेकिन खाने को तो कुछ भी नहीं है। क्या खाऊं ?"

"अगर तुम कहो तो खिचड़ी बना दूं !"

"खिचड़ी ? हां—खिचड़ी‧‧‧इज वेरी गुड—।"

उस वक्त मेरे पास चावल-दाल, आलू, नमक, तेल सभी कुछ मौजूद था। मैंने खिचड़ी चढ़ा दी। खिचड़ी पकते-पकते करीब आधी रात हो आई। उसी वक्त मेमसाहब भी एक जीप लिए हुए हाजिर हुईं।

खिचड़ी बिल्कुल तैयार थी। साहब और मेमसाहब ने मिलकर मूर्तियों को गाड़ी में चढ़ाया, फिर मेरी तरफ मुड़कर कहा, "अच्छा, तो फिर हम चलें !"

"क्यों, खिचड़ी नहीं खाओगे ?"

"फिर कभी आकर खा लेंगे। आज रहने दो।"

उन्होंने जीप में बैठने से पहले मुझसे कहा, "हां, एक बात और है, इस बीच अगर मूलचन्द आए तो उससे इस बारे में कुछ न कहना, खबरदार ! और हां, फिर कोई मूर्ति मिले तो मुझे ही देना। दोगे न ?"

साहब मूलचन्द का ध्यान आते ही शायद सहम गया था।

मैंने कहा, "मेरे लिए न तुम गैर हो, न मूलचन्द। जो मुझे ऊंचे दाम देगा, मैं उसे ही दूंगा।"

साहब ने कहा, "अच्छा, ठीक है। मूलचन्द तुम्हें जितने रुपये देगा, मैं उसका डबल दूंगा। अच्छा, मैं फिर आऊंगा। तुम जरा अपने बगीचे

में फिर तलाश शुरू करो।"

इतना कहकर वे लोग जीप में बैठकर चले गए।

तापस ने अपनी बातों का सिलसिला जारी रखा—

समझे, भइया, उसी दिन मैंने जिन्दगी में पहली बार शराब चखी थी और पहली बार हज़ारों-हजार रुपयों का मालिक बना था। वे रुपये मैंने अपनी कोठरी में ज़मीन खोदकर गाड़ दिए। मैं मन ही मन यह सोच-सोचकर परम निश्चिन्त हो गया कि अब रुपयों के अभाव में कभी तकलीफ नहीं सहनी होगी।

एक बार तो मन हुआ अब नौकरी को भी लात मार दूं। इस नौकरी में रहते हुए, पास में रुपया-पैसा होने के बावजूद अच्छे कपड़े-लत्ते, जूते पहनने को मुहताज बना रहूंगा। पांच हज़ार रुपयों का मालिक होने के बावजूद मुझे बगीचे में मालीगिरी ही करनी होगी। बगीचे में कुदाल चलाकर मिट्टी खोदनी होगी, सर पर तरकारियों की टोकरी उठाए, शहर में मालिकों के घर पहुंचना होगा। उनके लिए तो मैं तीस रुपल्ली के नौकर के अलावा और कुछ भी नहीं था!

मैं मन ही मन उधेड़बुन में पड़ा हुआ था। कभी-कभार बेतिया गांव के भी चक्कर लगा आता था। वहां मन्दिर के मरम्मत का काम शुरू हो गया था। अगर मैं वहां जाना एकदम से बन्द कर देता तो शायद उन्हें मुझपर शक हो जाता। अपने को बड़ा बनाने के लिए, जो बड़े नहीं हैं, उन्हें हाथ में रखना बेहद जरूरी है। हर बड़ा आदमी इस शिक्षा को गांठ बांधकर चलता है। अतः मैं भी इससे पूरा-पूरा फायदा क्यों न उठाता?

लेकिन सच बात तो यह थी कि मूलचन्द और साहब ने ही मुझे वह राह दिखाई थी, वर्ना जिन्दगी-भर शायद मैं तीस रुपल्ली का माली ही बना रहता।

मैंने पूछा, "फिर क्या हुआ?"

तापस ने बताया—

उसके बाद मेरी महत्त्वाकांक्षाएं बढ़ती गईं; मेरे दोस्त ! इन्सान की जिन्दगी में महत्त्वाकांक्षा ही उसकी सबसे बड़ी दोस्त भी है और शत्रु भी। महत्त्वाकांक्षा न हो तो आदमी अपनी तरक्की की तरफ से लापरवाह हो जाता है और अगर व्यक्ति की तरक्की न हो तो समष्टि की उन्नति असम्भव है। लेकिन यह बुरी इसलिए है कि इन्सान के तमाम रोग-शोक, अशान्ति, अन्याय और अत्याचार के मूल में यही महत्त्वाकांक्षा रहती है। दरअसल महत्त्वाकांक्षा ही छोटे आदमी को बड़ा बनने के लिए निरन्तर दौड़ाती रहती है।

मैं तो हमेशा से ही छोटा आदमी था। उस दिन से बड़ा बनने के लिए, यानी अधिक से अधिक रुपया कमाने की कोशिश में जी-जान से जुट गया। तीस रुपल्ली की नौकरी करता था न, इसीलिए मुझे तीस करोड़ का मालिक बनने की धुन सवार हो गई।

इस धुन के पीछे भी यही महत्त्वाकांक्षा है। क्या बताऊं, इस महत्त्वाकांक्षा ने ही मेरा सर्वनाश कर डाला, डियर !

मैं तापस की बातें सुनकर अवाक् रह गया, "सर्वनाश ? तू इसे सर्वनाश क्यों कह रहा है ?"

तापस ने जवाब दिया, "हां, भाई, बेशुमार दौलत ही मेरे लिए सर्वनाश का परवाना ले आई...।"

"सो कैसे ?"

"हां, हो सकता है, तुम लोग इसे सर्वनाश न मानो, क्योंकि तुम लोगों की जिन्दगी में रुपया ही सबसे बड़ी सम्पत्ति है। लेकिन मैं इसे सर्वनाश ही मानता हूं। हां, मैंने रुपया जरूर चाहा था, लेकिन मैं सच कहता हूं, इ—त—ना रुपया नहीं चाहा था। असल में रम्भा की वजह से ही मेरा सर्वनाश हुआ।"

मेरा अचरज बढ़ता जा रहा था, "रम्भा ? मतलब ? यह रम्भा कौन थी ? रम्भा क्या किसीका नाम था ?"

—हां, एक औरत का नाम ! घटना-क्रम में मुझ जैसा इन्सान भी एक दिन किसी लड़की की जिन्दगी से जुड़ गया। हालांकि तुम लोग भी जानते हो कि इस तरह की कोई दुर्बलता मेरे मन में कभी नहीं थी।

लेकिन ये सब बातें बाद में होंगी। पहले मैं अपनी नई ज़िन्दगी की शुरुआत के बारे में बता दूं।

जिस दिन मेरी पॉकेट में पांच हज़ार रुपये आ गए, मैंने समझ लिया कि रुपया जैसी चीज़ दुनिया की मिट्टी में कदम-कदम पर बिखरी पड़ी है। आदमी को सिर्फ बटोरना आना चाहिए। इसके अलावा और किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं है।

उस बार भी यथारीति मैं बगीचे के फल-सब्ज़ियां लेकर लखनऊ पहुंचा। खैर, हर बार ही ये चीजें लेकर मैं मालिक को सलाम ठोंकने पहुंच जाता था।

वह बुढ़िया धार्मिक स्वभाव की औरत थी। हर दिन नियम से गोमती-स्नान करने जाती थी और घर लौटकर दिन-भर पूजा-पाठ और तुलसीदास की रामचरितमानस का पाठ सुनते रहना उसका रोज़ का नेम था। वह मुझे बेहद प्यार करती थी। खासकर तर-तरकारी ले जाने की वजह से वह मुझे बेहद चाहती थी। मालिकों का भी यही ख्याल था कि मैं ईमानदार आदमी हूं। बंगाली था तो क्या हुआ? मेरे मालिकों का कहना था कि मैं आम बंगालियों से अलग हूं।

लेकिन मेरे मन में उस वक्त एम्बिशन यानी महत्त्वाकांक्षा का ज़हर प्रवेश कर चुका था, इसका उन्हें सुराग तक नहीं मिला। अतः उनके घर के दरवाज़े मेरे लिए हमेशा खुले हुए थे।

कोठी के रसोइया को यह खास हुक्म था कि मैं खाने में जो-जो चाहूं, मुझे वही परोसा जाय। हालांकि मांस-मछली उस कोठी में निषिद्ध था; लेकिन दूध-दही की कोई कमी नहीं थी। मैं जी भरकर दूध-दही पर हाथ साफ करता था। महाराज से कहने-भर की देर होती थी। वह मेरे लिए लोटा भरकर लस्सी तयार कर देता था।

यूं भी महीने में सिर्फ एक बार ही तो वहां जाता था। सुबह पहुंचता था और वह दिन और रात वहां बिताकर अगले दिन पौ फटने के पहले ही मैं गांव के लिए रवाना हो जाता था।

लेकिन उस बार एक कांड हो गया। मैं उस दिन भी यथारीति सुबह के वक्त पहुंचा और भाईजी को तर-तरकारी सौंपते हुए, उनके पैर

छूकर प्रणाम किया। उसके बाद नहाना-खाना निपटाकर शहर घूमने निकल गया। शाम के शो में एक फिल्म भी देख डाली। रात को घर लौटकर सो गया। सुबह पौ फटने के पहले मुझे जाग जाना चाहिए था, क्योंकि भोर-भोर ही मुझे ट्रेन पकड़नी थी। लेकिन उस दिन मैं ऐसी गहरी नींद सोया कि सुबह होने का पता ही नहीं चला। जब नींद टूटी तो भोर के करीब पांच बज चुके थे।

उस समय तक दिन की हलचल शुरू हो चुकी थी। कोठी में गजब-सा कोहराम मचा हुआ था। उसी शोर-गुल में मेरी भी नींद टूट गई। पता चला पूजा-घर से नटराज की अष्टधातुवाली मूर्ति चोरी हो गई है।

मैं भौंचक्का रह गया। कोठी में जितने महाराज, नौकर-दाई थे, सब अपना-अपना काम छोड़कर वहां इकट्ठा थे। सबके चेहरे पर विस्मय-कौतूहल और भय की छाप थी। कोठी की इतनी पुरानी मूर्ति! दादे-परदादों के ज़माने से उस पुश्तैनी मूर्ति की पूजा होती आ रही है। सिर्फ पूजा ही नहीं, कहते हैं इस कोठी की तमाम सम्पत्ति और ऐश्वर्य उसी गृह-देवता की कृपा का फल था।

कोठी के मालिक सुबह नहा-धोकर सबसे पहले इसी देवता की पूजा में बैठते थे और पूरे एक घण्टे तक पूजा करते थे। तब तक मूर्ति की सेवा-आरती के लिए पुरोहित जी भी पहुंच जाते थे। पूजा का सामान जुटाने के लिए वहां पहले से ही आदमी तैनात रहते थे। इतनी सारी व्यवस्था-बन्दोबस्त के बावजूद और इतने-इतने लोगों के होते हुए भी यह मूर्ति कौन चुरा ले गया? आखिर यह चोरी किस वक्त हुई?

हर किसीके मन में यही प्रश्न घुमड़ रहा था। मैं भी वहीं खड़ा था। मेरे मन में भी वही प्रश्न शोर मचा रहा था।

माताजी ने मुझसे पूछा, "तुम तो रोज सबेरे ही उठकर चले जाते हो, भइया! आज यहीं थे—तुमको भी पता नहीं चला?"

मैंने बेहद निरीहता से जवाब दिया, "हुजूर, मुझे कल रात सिनेमा देखकर लौटने में काफी रात हो गई थी, सो थककर सो गया। सुबह नींद ही नहीं टूटी। वैसे कोई धमाका सुनता तो मेरी नींद जरूर टूट जाती।"

हां, यह बात तो सच थी। कोठी में इतने सारे लोग! कौन कहां सोता है, कौन कब आ-जा रहा है, इसका भी तो कोई ठीक-ठिकाना नहीं है। इतनी बड़ी कोठी में इस सबकी खोज-खबर रखना भी सम्भव नहीं था।

पुलिस में खबर दी गई। पुलिस आई, सबकी रिपोर्ट लेकर वापस लौट गई।

मैं वहां रहकर क्या करता! मैंने भी विदा ली।

यह मेरा तीन नम्बर केस था। पहले की तरह इस केस में भी बे-कसूर खलास हो गया। पहला केस—गणेश की मूर्ति। दूसरा केस—पार्वती और गणेश की मूर्ति और उसके बाद नटराज की मूर्ति।

दरअसल चोरी करते हुए जिस चीज़ की सबसे अधिक ज़रूरत है, वह है संयम। बड़ा साधु या बड़ा चोर बनने के लिए संयम ज़रूरी है।

उस साहब ने मुझे इस बारे में सावधान कर दिया था।

मुझमें वह संयम था, इसीलिए मैं सीधे अपनी नौकरी पर लौट आया। मैंने आते समय किसीसे मुलाकात तक नहीं की, रास्ते में भी किसीसे कोई बातचीत नहीं की। क्या पता, पुलिस को कहीं मुझपर ही चोरी का शक न हो जाए।

उस घटना के बाद मुझे और किसी मूर्ति की तलाश नहीं थी। हां, बीच-बीच में बेतिया जाकर नई मूर्ति तैयार कराने के बारे में ताकीद कर आता था।

अगले महीने की पहली तारीख को जब मैं मालिक की कोठी में पहुंचा तो खबर मिली कि कोठी के दरबान को छह महीने की जेल हो गई है।

मैंने महाराज से ही दरियाफ्त किया, "दरबान को क्यों जेल जाना पड़ा, महाराज! कहीं उसीने तो चोरी नहीं की थी?"

महाराज ने जवाब दिया, "हां भइया, वह दरबान बाहर से तो बिल्कुल सीधा-सादा और भलेमानस जान पड़ता था, लेकिन अन्दर ही अन्दर नम्बरी शैतान था…"

मैंने दुबारा पूछा, "अच्छा, यह चोरी उसीने की थी। इसका कोई

सबूत भी मिला था?"

महाराज ने कहा, "अरे, सबूत न मिला होता तो क्या बेकार ही उसे जेल भेज दिया जाता? अरे, भइया, वह महाराज चोरी-चोरी गांजे का दम जो लगाया करता था। मैंने अपनी आंखों से उसे गांजा चढ़ाते देखा है..."

"हां, तब तो वह बेटा जरूर चोर होगा। गंजेड़ी आदमी कभी भला नहीं हो सकता।"

खैर, जब सारा मामला निबट गया और अपराधी भी गिरफ्तार कर लिया गया तो एक रात साहब और मेमसाहब दुबारा मेरे बगीचे में आ धमके। मैं अपनी कोठरी में खर्राटे भर रहा था। उनकी आवाज सुनकर बाहर आते ही साहब ने फुसफुसाकर कहा, "चुप! बात मत करो। बत्ती भी बुझी रहने दो..."

यह कहकर वे दोनों मेरी कोठरी में घुस आए और अन्दर से सिटकिनी लगा ली।

उन्होंने कोठरी के अन्दर घुसकर कहा, "हां—अब बत्ती जलाओ।"

मैंने बत्ती जला दी। साहब ने अपनी जेब से गड्डी-गड्डी नोट निकालकर मुझे देते हुए कहा, "ये लो। दस हजार रुपये हैं।"

दस हजार रुपये! मैं चौंक उठा।

साहब ने कहा, "ये रुपये अच्छी तरह गिन लो। अब तक तो तुम्हारे पास बहुत सारे रुपये हो गए होंगे। लेकिन अब तुम्हारा यहां रहना नहीं चलेगा..."

"क्यों?"

"हां, अब तो हम लोगों का भी यहां रहना असम्भव है। लोगों को पता चल गया है। इसके पीछे भूलचन्द का हाथ है।"

मैं जैसे आसमान से गिरा, "भूलचन्द! भूलचन्द को यह बात कैसे मालूम हुई?"

'इतने दिनों नहीं जानता था, लेकिन अब जान गया है। असल में इस धन्धे में अब उसकी वैसी आमदनी नहीं रही। शुरू-शुरू में वही हम लोगों को माल सप्लाई करता था। लेकिन अब नहीं कर पा रहा है।

इन दिनों उसे रुपयों की कड़की है, इसीलिए वह भूखा खटमल हो रहा है। अब वह जरूर पुलिस को खबर करेगा। नटराज की मूर्ति चोरी जाने के बाद, जिस वक्त वहां हंगामा मचा था, मूलचन्द मन ही मन तुमसे बुरी तरह जल उठा था।"

"लेकिन उस जुर्म के लिए तो दूसरा आदमी पकड़ा गया था और उसे जेल भी हो चुकी है।"

साहब ने कहा, "बाहरी लोग जो जानते हैं, वही ठीक है, लेकिन मूलचन्द तो इसी धन्धे का आदमी है न! उसको पक्का विश्वास है कि इसके पीछे तुम्हारा ही हाथ है। अब अगर वह पुलिस में खबर दे दे तो मुमकिन है, तुम्हारी कोठरी की तलाशी ली जाए। अगर तुम्हारी कोठरी से पुलिस को हजारों-हजार रुपये हाथ लगे, तो वह तुम्हें ही पकड़ेगी। इससे बेहतर है तुम यहां से फौरन चल दो..."

मैंने पूछा, "और मेरी यह नौकरी?"

साहब ने कहा, "तीस रुपये की नौकरी के लिए तुम्हें इतनी चिन्ता है? तुम्हारे पास जो बुद्धि और प्रतिभा है, उसके लिए तीस रुपये तनखा देकर तुम्हारे मालिक तो तुम्हें एक्सप्लॉयट् कर रहे हैं। तुम्हें तो असल में तीस हजार रुपये मिलने चाहिए।"

"तीस हजार रुपये? लेकिन इतने रुपये मुझे कौन देगा?"

साहब ने मेरे सीने पर प्यार से हाथ फेरते हुए कहा, "मैं दूंगा"

हां, मुझे याद है, उस दिन मैं साहब की बात सुनकर एकबारगी चौंक उठा था। तीस हजार रुपया महीना? यह तो किसी अरबी उपन्यास जैसी घटना लगती है।

मैंने पूछा, "तुम मुझे इतने रुपये कहां से दोगे? और भला क्यों दोगे?"

साहब ने कहा, "अरे भाई, वह रुपया मैं नहीं दूंगा। देखना, तुम खुद ही उतने रुपये कमाओगे।"

मैंने दुबारा पूछा, "मुझे काम क्या करना होगा?"

"क्यों? जो काम अभी कर रहे हो, वही काम।"

"लेकिन यहां तो मुझे और किसी मूर्ति का सुराग नहीं मिला।

जितनी मूर्तियां थी, वह तो मैं तुम्हें दे ही चुका हूं। अब तो मेरे पास एक भी नहीं है—"

"अरे है! बहुत सारा है! इंडिया इतना विशाल मुल्क है! इतना प्राचीन देश! इतना पुराना ट्रेडीशन! अरे, यहां कितनी-कितनी मूर्तियां हैं! बेहिसाब! उनका हिसाब किसीको नहीं मालूम?"

उस रात मैं साहब के पास बैठा-बैठा उनकी बातें सुनता रहा। साहब ने उस दिन मेरी आंखों में जैसे नशा भर दिया। मेरा लालच बढ़ा दिया और मेरी जिन्दगी की समूची धारा एकबारगी बदल दी।

मैंने पूछा, "अब मुझे क्या करना होगा?"

"तुम यह नौकरी छोड़ दो और मेरे साथ चलो।"

मैंने चकित होकर जानना चाहा, "कहां?"

"वह हम बाद में बताएंगे!"

इतनी देर बाद मेमसाहब ने पहली बार मुंह खोला, "हांऽऽहां, चलो न, फ़ादर! अभी, इसी वक्त चलो। लो, तैयार हो लो। रात में ही चल देना बेहतर है ताकि कोई देख न सके।"

मैं तैयार हो गया। वैसे भी तैयार होने में मुझे वक्त कितना लगता? सम्पत्ति के नाम पर मेरे पास कुल मिलाकर महज दो अदद कुर्ता-धोती। यही लेकर निकल पड़ा। घुप्प-अंधेरी रात! निस्तब्ध परिवेश! हमारी जीप बगीचे के खामोश पेड़-पौधों की छाया में रेंगती हुई आगे बढ़ गई। मेरा वह घर पीछे छूट गया, जिसकी एकान्त कोठरी में मेरे निःसंग जीवन के बहुत सारे छोटे-मोटे सामान बिखरे पड़े थे। मकान-बंगला सूना हो गया। मुसीबत के दिनों की परम शुभाकांक्षिणी अपनी उस आश्रयदात्री के प्रति मैंने उस दिन चरम विश्वासघात किया था।

तापस अपनी कहानी सुनाते-सुनाते अचानक चुप हो गया।

ट्रेन की गति तेजतर हो उठी थी। इस बीच जाने कितने स्टेशन

आए-गए, कितने स्टेशन पीछे छूट गए। जाने कितने यात्री चढ़े और उतरे। हम लोगों को जैसे कुछ भी होश नहीं था। इस बीच हम लोग डाइनिंग-कार तक जाकर खाना-पीना भी निवटा आए। अब सोने की बारी थी।

मैंने पूछा, "उसके बाद क्या हुआ ?"

"रुक न ! सारी रात बत्ती जलाकर यूं बातें करने में दूसरे यात्रियों को आपत्ति हो सकती है ? ऐसा कर न···। चल, हम लोग नागपुर में ही उतर जाएं।"

नागपुर शाम को ही आनेवाला था लेकिन ट्रेन काफी लेट चल रही थी।

मैंने कहा, "लेकिन कल तक मुझे बम्बई पहुंचना ही होगा, बन्धु ! दफ्तर का काम है···"

तापस ने कहा, "अरे भई, कल सुबह तक तुझे बम्बई पहुंचा दूं तो चलेगा न ! नागपुर से हम लोग प्लेन पकड़ लेंगे। आज रात-भर हम लोग किसी होटल में ठहर जाएंगे···"

और तापस ने सचमुच यही किया। उसने गोण्दिया स्टेशन पर उतरकर जाने किसे टेलिग्राम किया था ! नागपुर स्टेशन पर उतरते ही अपने स्वागत का लम्बा-चौड़ा इन्तज़ाम देखा। पांच-सात आदमी हमारी अभ्यर्थना के लिए स्टेशन पर पहले से ही हाज़िर थे। उन लोगों ने ही मेरा बक्सा-बिस्तर गाड़ी में रखवा दिया। हम लोगों को कुछ भी नहीं करना पड़ा।

हां, तापस का रोब-दाब तो अपनी आंखों ही देख रहा था। हर किसीने तापस को सलाम ठोंक-ठोंककर बेकार ही हाथ दर्द कर डाले। तापस ने उनकी तरफ नज़र भी नहीं डाली। वह पूरे मनोयोग से मुझसे बतियाता हुआ आगे बढ़ा और कुछ ही मिनट में किसी होटल के सामने ले जाकर खड़ा कर दिया। उसके बाद शाही-खातिरदारी ! मिनट-मिनट पर लोग आ-आकर यह पता लगाने की कोशिश कर रहे थे कि हमारी सेवा में कहीं कोई त्रुटि तो नहीं रह गई।

मैं सारा मामला देखकर एकबारगी भौंचक्का रह गया।

हमारे नहाने-खाने तक तापस बेतहाशा पीता रहा। मैंने गौर किया, तापस के आस-पास चमचों की कमी नहीं है। सभी तापस की मुसाहिबी में व्यस्त थे। सब ऐसे गद्गद हो रहे थे, मानो उनकी मुसाहिबी अगर तापस को खुश कर दे, तो उनका अहोभाग्य होगा।

उनमें से एक व्यक्ति ने हिम्मत करके मुझसे अकेले में पूछ ही लिया, "सर ! आप क्या रायसाहब के पुराने दोस्त हैं ?"

"जी हां ! क्यों ?"

उस आदमी ने कहा, "हम लोगों का यही ख्याल था कि रायसाहब का कोई दोस्त नहीं है, इसीसे पूछ लिया। असल में मिस्टर राय बेहद कड़े सिद्धान्तों के आदमी हैं।"

"क्यों, मिस्टर राय का कोई दोस्त नहीं है ?"

"नहीं, सर ! इसीलिए आपको देखकर हम सब बेहद अचरज में पड़ गए हैं। देखिए न···, इतनी दौलत के मालिक हैं, लेकिन् भोगने-वाला कोई नहीं है···"

"अच्छा ? मुझसे तो उसकी अचानक मुलाकात हो गई···काफी सालों बाद ! इसीलिए वह मुझे अपने साथ यहां खींच लाया। दरअसल मैं तो बम्बई जा रहा था।"

वह आदमी इतनी देर बाद शायद मेरी उपस्थिति की असली वजह जान-समझकर निश्चिन्त हुआ।

उसने कहा, "आपसे इतना कुछ पूछ डाला, आप कुछ अन्यथा न लें, सर ! रायसाहब सुनेंगे तो नाराज़ होंगे। लेकिन उन्हें जितना देखता हूं, मेरा कौतूहल बढ़ता जा रहा है, सर !"

उसकी बातें सुनकर मेरे मन में भी कौतूहल जाग उठा। मैंने पूछा, "क्यों भला ?"

वह आदमी कोई उत्तर न दे पाने की वजह से पसोपेश में पड़ गया। उसे जैसे कोई उत्तर ही नहीं सूझ पड़ा।

मैंने कहा, "हां, हां, कहिए न ! मैं यहां के मिस्टर राय के बारे में कुछ नहीं जानता। आप डरिए नहीं, मैं उनसे कुछ नहीं कहूंगा। आप कहिए···"

उस आदमी ने पूछा, "अच्छा, इस दुनिया में क्या उनका कोई नहीं है?"

"मैं पहले की बात बता सकता हूं। पहले जो उसके अपने लोग थे, वे सब अब मर चुके हैं। लेकिन यहां उसकी जिन्दगी में कौन-कौन है, भला यह मुझे कैसे और कहां से मालूम होगा?"

उस आदमी ने कहा, "नहीं, सर! यहां उनका कोई नहीं है। अगर कोई होता तो हम लोगों को जरूर मालूम होता।"

"खैर, इसमें हैरान होने की क्या बात है? दुनिया में कितने ही लोगों का शादी-ब्याह नहीं होता। वे लोग अपनी सारी जिन्दगी अकेले ही बिता देते हैं। यह तो कोई नई बात नहीं है।"

उस आदमी ने कहा, "नहीं, मेरा मतलब यह नहीं था। आप जानते हैं, राय साहब हमारे किसी देवी-देवता को नहीं मानते? देवी-देवता के नाम पर कोई चन्दा मांगने आता है, तो वह आग-बबूला होकर जो-सो कांड कर बैठते हैं।"

उन सज्जन ने तापस के सम्बन्ध में और भी बहुत-सी बातें बताईं और मैं भी एकाग्र होकर सुनता रहा। ये बातें तो तापस ने मुझे नहीं बताई थीं।—अगर कोई आकर उनके सामने यूं ही हाथ फैला दे तो वे झट से सौ-दो सौ रुपये दे डालते हैं।···रुपये के अभाव में अगर कोई आदमी बेटी का ब्याह नहीं कर पा रहा है तो इसकी सूचना मिलते ही साहब दान-खैरात करने में ज़रा भी नहीं हिचकते।···

—लेकिन देवी-देवताओं पर वे भयंकर नाराज़ रहते हैं।

मैंने पूछा, "क्यों?"

उस आदमी ने कहा, "यह मैं नहीं जानता। बस, देवी-देवता का नाम सुनते ही भड़क जाते हैं।" एक बार एक सज्जन उनसे शिव-मन्दिर की प्रतिष्ठा के लिए चन्दा मांगने आए। वह खुद भी काफी अमीर आदमी थे। पैसेवाले होने के साथ-साथ वह काफी धार्मिक और सात्विक किस्म के इन्सान थे। उनकी इच्छा थी कि नागपुर में एक शिव-मन्दिर बनवाएं। सच साहब के यहां आते ही वह होटल में हाजिर हुए।

साहब ने उनसे पूछा, "आप कुछ कहना चाहते हैं?"

"आपसे कुछ चैरिटी मांगने आया हूं।"

रायसाहब ने पूछा, "किस बात की चैरिटी? बेटी के ब्याह के लिए?"

"नहीं! ये बात नहीं है···"

"तो क्या बेटे की पढ़ाई के लिए?"

"नहीं, यह बात भी नहीं है।"

"तो क्या कांग्रेस के लिए?"

उस सज्जन से अब नहीं रहा गया। उन्होंने कहा, "ना! ना! मैं किसी भी राजनैतिक पचड़े में नहीं पड़ता। मुझे खद्दर के कुर्ते-धोती में देखकर शायद आपने यही अनुमान लगाया हो। लेकिन मैं भला इन सब मामलों के लिए आपके पास क्यों आने लगा? असल में मैं आया था···"

इतना कहकर वह अपने बैग से कुछेक कागज-पत्र निकालकर दिखाने लगा, "ये देखिए—चीफ मिनिस्टर, होम-मिनिस्टर···इसके अलावा मध्य प्रदेश के गवर्नर—हर किसीने इस आवेदन-पत्र पर हस्ताक्षर किए हैं। इसे पढ़ते ही आप मेरे आने का उद्देश्य समझ जाएंगे।"

यह कहकर उन्होंने एक पुस्तिका सामने रख दी।

रायसाहब ने उसे उठाते हुए कहा, "देखिए, मेरे सामने उन लोगों की बातें मत कीजिए। उनकी तरह मेरे पास बर्बाद करने के लिए वक्त नहीं है। आपको क्या चाहिए, सीधे-सीधे वही कह डालिए। चन्दा चाहिए न?"

"जी हां!"

रायसाहब ने पाकेट से पांच सौ रुपये निकालकर कहा, "ये लीजिए। इस वक्त मेरे पास समय नहीं है। सुबह यानी पौ फटते ही मुझे प्लेन से रवाना होना है। मैं कल जर्मनी जा रहा हूं। इससे पहले मुझे बहुत सारे काम निपटाने हैं।"

उन सज्जन ने पांच सौ रुपये जेब में रखकर उसकी रसीद बनाकर रायसाहब को पकड़ा दी। रसीद पर छपे हुए वक्तव्य को पढ़कर रायसाहब अचानक चौंक उठे—"सार्वजनिक शिव-मन्दिर! लेकिन

आपने तो मुझे यह बात बताई नहीं ? यह बात अगर पहले ही मालूम हो गई होती, तो मैं एक पैसा भी चन्दा नहीं देता। लाइए, मेरे रुपये वापस कीजिए। मुझे आपको रुपया नहीं देना है…"

उन महाशय ने सकपकाकर कहा, "लेकिन, आप तो जानते हैं, यहां एक भी बढ़िया शिव-मन्दिर नहीं है। यहां के धर्मात्मा लोगों को कितनी असुविधा होते हैं ? मैं…"

रायसाहब ने उनकी बात बीच में ही काटते हुए कहा, 'देखिए, ये शिव-गणेश, किशन वगैरह का नाम मेरे आगे मत दोहराइए। मैं ऐसी बातें बिल्कुल पसन्द नहीं करता। आप मेरे रुपये वापस कीजिए…"

आखिरकार उन सज्जन की जान तभी छूटी, जब उन्होंने रुपये लौटा दिए।

मुझे ये कहानियां सुनते हुए मजा ही आ रहा था। खासकर तापस से जो सुना था, ये कहानियां उससे जरा अलग थीं।

खैर, यह भी मेरे लिए एक अजीबोगरीब अनुभव था। अभी तक जाने कहां तापस पड़ा था, जाने कहां मैं ! घटना-चक्र में जाने कैसे हम दोनों की मुलाकात हो गई और जाने कैसे हम दुबारा टकरा गए। किसी दिन जिस तापस को हमने साधारण—अति साधारण समझा था, वह कैसे इतने प्राचुर्य का मालिक बन गया, कैसे वह इतने सारे कर्मचारियों का कर्ता-वर्ता विधाता बन बैठा—ये तमाम बातें मेरे लिए बेहद आश्चर्य-जनक थीं।

वह सज्जन जरा ज्यादा ही बोल रहे थे, खैर इसमें मेरा ही फायदा था। लेकिन उन महाशय की बातों से यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो गई कि तापस ने मुझसे जो कुछ कहा था, सब कुछ अक्षरशः सच था। तापस के पास सचमुच बेशुमार दौलत है, अगर वह विराट अमीर न होता तो इतनी ऊंची-ऊंची तनखा देकर इतने सारे लोगों को नौकरी पर कैसे रखता ? वह भी सिर्फ एक शहर में नहीं, हिन्दुस्तान के तमाम बड़े-बड़े शहरों में !

उन महाशय ने अपना नाम पटवर्धन बताया था।

मैंने पटवर्धन से कहा, "इसमें क्या फर्क पड़ता है, मिस्टर पटवर्धन ! सब लोग तो आखिर एक जैसे नहीं होते !"

पटवर्धन ने जवाब दिया, "अच्छा, अगर ऐसा ही है, तो रायसाहब हर साल चिंगलीपट के मन्दिर में रुपया क्यों भेजते हैं ?"

मैंने चकित होकर पूछा, "चिंगलीपट ? यह चिंगलीपट कहां है ?"

"साउथ-इंडिया में। आपने महाबलिपुरम् का नाम सुना है ?"

"हां, सुना तो है, लेकिन वहां कभी गया नहीं हूं।"

"उसी महाबलिपुरम् से करीब बारह मील दूर···"

"चिंगलीपट हर साल क्या आप ही जाते हैं ?"

"हां, हर साल मैं ही दो हजार रुपये लेकर चिंगलीपट जाता हूं, मुझे रायसाहब का बिल्कुल स्टैंडिंग आर्डर है। वहां एक बूढ़े को रुपये सौंपकर लौट आता हूं।"

मुझे इसमें किसी रहस्य का आभास मिला। मैंने पूछा, "क्यों दे आते हैं ?"

"यह तो खैर मुझे भी नहीं मालूम। चिंगलीपट से बहुत अन्दर जाकर एक गांव पड़ता है। उस गांव के एक बूढ़े आदमी के हाथ में रुपये सौंप आता हूं।"

"हर बार क्या आप ही रुपया देने जाते हैं ?"

"जी हां ! रायसाहब हर बार मुझे ही भेजते हैं।"

हमारी बातों में अचानक व्याघात पड़ा। कमरे में तापस ने आवाज दी। मुझे भी कुछ नया सुनने को नहीं मिला। तापस को पटवर्धन से जरूरी बातें करनी थीं। सिर्फ पटवर्धन ही नहीं, स्टाफ के तमाम लोगों से वह काफी रात गए तक काम-काज की बातें करता रहा।

मेरा कौतूहल बढ़ गया था। तापस ने ट्रेन में आते हुए अपने शुरू-शुरू के जीवन की कहानी सुनाई थी। उसके बाद नागपुर में कदम रखते ही, अचानक पटवर्धन से मुलाकात हो गई। उनकी जुबानी कुछ नई बातें मालूम हुईं।

लेकिन अब तक जितना कुछ देख-सुन चुका था, उससे यही अन्दाज

ा कि वह चाहे कितना ही अमीर या और कुछ क्यों न बन गय
उसकी ज़िन्दगी के साथ कोई न कोई रहस्य ज़रूर जुड़ा है।

नागपुर में रात बिताने के लिए जितनी देर ठहरा था, तापस से
ी कोई खास बातचीत नहीं हुई, क्योंकि मैं अपने कमरे में था और
ापस अपने कमरे में। मुमकिन है कामकाज की भीड़ में वह ठीक तरह
ो भी न पाया हो। मैं थोड़ी देर के लिए सो गया था।

किसीकी आवाज़ सुनकर जब मेरी नींद टूटी थी, तो मेरी निगाह
खुद-ब-खुद घड़ी की तरफ चली गई थी। रात के तीन बज रहे थे।

तापस खुद ही मुझे बुलाने आया था—"चल, एयरपोर्ट चलना है।"

रात का आखिरी प्लेन। जो लोग उस प्लेन से जानेवाले थे, वे
हमारे पहुंचने के बहुत पहले ही लाउन्ज में बैठकर प्रतीक्षा कर रहे थे।
प्लेन छूटने की घोषणा सुनकर, वे लोग प्लेन की तरफ बढ़ने लगे। मैं
तापस के साथ ही साथ चल रहा था।

तापस ने पूछा, "रात सो लिया था न?"

"हां! और तू?"

"मुझे सोने की ज़रूरत नहीं पड़ती। ज़िन्दगी के इन दस सालों में
शायद ही कभी मैं सोया होऊं।"

"अच्छा, न सोने से तेरी तबियत नहीं बिगड़ती?"

"जगे रहने का अब मुझे अभ्यास हो गया है। अब तकलीफ नहीं
होती..."

उसके बाद हममें अधिक बातचीत नहीं हुई। हमारा प्लेन रवाना हो
चुका था। करीब दो घण्टे बाद हम लोग बम्बई पहुंच गए थे।

तापस ने कहा, "यहां तू मेरे पास ही ठहरेगा। तुझे कोई असुवि
नहीं होगी। अभी तुझसे मुझे बहुत-सी बातें करनी हैं..."

लेकिन बम्बई पहुंचकर हममें कोई खास बातचीत नहीं हु
हालांकि उसके जीवन की असली कहानी सुनने का आग्रह मैं दबा
पा रहा था।

सचमुच जीवन में हम सबने सिर्फ रुपया ही चाहा था। उठते
बैठते रुपया, खाते रुपया, सोते रुपया! आखिर रुपया कमाने

ही तो हम लोग लिखना-पढ़ना सीखते हैं; बड़े बनने की कोशिश करते हैं ! हम लोगों के लिए बड़े होने का मतलब सिर्फ अमीर बनना है। हां, महान होना तो किसीने नहीं चाहा। फिर? फिर तापस ने ही क्या कसूर किया था?

तापस के मकान का चक्कर लगाने के बाद मुझे पता चला—जिसे कहते हैं प्रचुर दौलत—तापस के पास भी प्रचुर दौलत है। प्लेन से उतरते ही गाड़ियों और लोगों का जैसे तांता लग गया। शायद उसने नागपुर से फोन पर ही अपने आने की खबर भिजवा दी थी।

तापस का बंगला पाली हिल पर था। कमरे में कदम रखते ही तापस ने मुझसे कहा, "यहां ठहरने में तुझे कोई परेशानी तो नहीं होगी?"

मैंने निगाहें घुमाकर देखा, कमरे के साज-सरंजाम में कहीं कोई कंजूसी नहीं थी। एयर-कंडीशंड कमरा।

मैंने खाने की मेज पर सूचना दी, "आज मुझे जरा काम पर निकलना होगा, भाई।"

तापस ने कहा, "तुझे मैं एक गाड़ी दे देता हूं। तू जब चाहे निकल सकता है। गाड़ी तेरी ही ड्यूटी में रहेगी…"

"और तू?"

"यहां मेरे पास तीन गाड़ियां हैं। मुझे कोई असुविधा नहीं होगी।"

मैंने देखा तापस असल में आयात-निर्यात का धन्धा करता है, जिसे कहते हैं—इम्पोर्ट-एक्सपोर्ट! हालांकि वह क्या [illegible] है इसका पता नहीं चल सका, लेकिन उस दिन अपने [illegible] निपटाकर जब मैं उसके दफ्तर में दाखिल हुआ तो [illegible] देखकर मैं हतवाक्य रह गया। इतने सारे लोग! [illegible] स्टाफ! इतने दरबान-चपरासी, स्टेनो और [illegible] मुझे लगा कि तापस ने जो कुछ बताया था, [illegible] उसमें एक शब्द भी झूठ नहीं था।

मुझे देखते ही तापस ने [illegible] "तेरा काम हो गया?"

मेरे काम में क्या असुविधा हो सकती थी ? मैं तो नौकरी करता हूं ! नौकरी के दायित्व बेहद लिमिटेड यानी सीमित होते हैं। बेहद सीमित। सारा सिर-दर्द तो दफ्तर चलानेवाले मालिकों के जिम्मे है। मैं तो अपने दफ्तर का एक कर्मचारी-भर हू और तापस अपने दफ्तर का खुदमुख्तार। अतः असली झंझट तो उसीके जिम्मे है।

मैंने कहा, "तेरी बाकी कहानी तो सुन ही नहीं पाया। अन्त में तू लखनऊ छोड़कर चला आया था न ?"

तापस ने कहा—हां, चला ही गया था। चले जाने के अलावा और कोई उपाय भी तो नहीं था। एक तरफ हजारों-हजार रुपयों का लोभ और दूसरी तरफ मूलचन्द का खौफ। अगर उस दिन मैं वहां से निकल न आता, तो वह मुझे मार डालता।

सचमुच उन दिनों मूलचन्द को मेरी वजह से काफी नुकसान हो रहा था। दरअसल शुरू-शुरू में मूलचन्द ही साहब लोगों का एजेन्ट था। उन लोगों ने उसे ढेर-ढेर रुपये खिलाए थे। पिछले दिनों उसने उन लोगों पर यथारीति दबाव डालना शुरू कर दिया था। ये साहब लोग विदेश से पहली बार आए थे। लखनऊ नये-नये पहुंचे थे। जब वे लोग इस देश में आए थे, उनके बदन पर मैले-कुचैले कपड़े भर थे। हालांकि उनका पहनावा बिलकुल हिप्पियों की तरह था, लेकिन असल में वे लोग हिप्पी नहीं थे। उन्हीं दिनों जाने कैसे मूलचन्द के चक्कर में आ फंसे। शुरु-शुरु में मूलचन्द ने भी कोई खास दबाव नहीं डाला। लेकिन जैसे ही उसे पता चला कि उन साहबों के पास अथाह रुपये हैं, वह माल देने में काफी हीले-हवाले करने लगा। कभी माल देता भी था तो बदले में खूब दबाव डालकर मनमाने रुपये वसूल करता था।

फिर मूलचन्द का दुस्साहस और अधिक बढ़ गया। ऐसा भी वक्त आ पहुंचा, जब वह बात-बात में पुलिस का डर भी दिखाने लगा।

साहब लोग पुलिस से बुरी तरह डरते थे।

उसके बाद जब उसे पता चला कि साहब लोग बाबू लोगों के बंगले में माली से सीधे-सीधे माल खरीदते हैं तो उससे चुप नहीं रहा गया। इधर साहब लोग भी सहम गए थे। अतः उन्होंने मुझे लेकर चम्पत हो

जाने की योजना बना डाली।

खैर, मैंने भी देर नहीं की। मैं भी रुपयों की पोटली दबाकर उनके संग रातों-रात लखनऊ से नौ-दो-ग्यारह हो गया। अगले दिन जब हम देहरादून पहुंचे, वहां के अखबारों में पढ़ा कि बाग की उस कोठी में किसी-ने आग लगा दी थी। सारी कोठी जलकर राख हो गई।

साहब ने कहा, "देखा न, अगर तुम नहीं आते तो तुम भी उस कोठी के साथ जलकर खाक हो जाते…"

साहब के साथ रहते-रहते, कुछ ही दिनों में उनसे मेरी खासी दोस्ती हो गई।

कहां तो कलकत्ते में जिन्दगी शुरू हुई, और अब जाने कहां आ पहुंचा! वैसे ही जाने कहां से ये लोग आ जुटे और मेरे साथी बन गए।

मैंने महसूस किया साहब बेहद भलेमानस हैं। उस दिन से मैं उन्हें नाम लेकर पुकारने लगा था। जिस नाम से मेमसाहब पुकारती थी, उसी नाम से मैं भी बुलाने लगा। मेमसाहब उन्हें 'बिली' पुकारती थीं, मैं भी 'बिली' कहने लगा। बिली यानी इच्छित-फ्रेण्ड।

मैंने कहा, "बिली, अगर कभी मैं पुलिस के हाथों पकड़ा गया तो याद रखो जमानत तुम्हें ही देनी होगी…"

बिली हंस देता था, "तुम इतना डरते क्यों हो? इतना जान लो कि जब तक रुपया पास हो, किसीसे भी डरने की ज़रूरत नहीं है। दरअसल इस दुनिया में रुपया ही सब कुछ है। मुझे देखो, कितनी दूर से चलकर मैं इण्डिया आ पहुंचा हूं। क्यों? महज रुपयों के लिए। तुम भी अगर कभी पकड़े गए, तो यह रुपया ही तुम्हें छुड़ा लाएगा।"

मुझे उसकी बातों पर कुछ-कुछ यकीन होने लगा। मैंने अपने आस-पास निगाहें दौड़ाकर देखा—जिसके पास दौलत है, हर जगह उसीकी खातिर है। मैं सोचा करता था, जब मेरे पास भी धन हो जाएगा, तो लोग इसी तरह मेरी भी खातिर किया करेंगे। उस समय मेरे शरीर पर यह कहीं नहीं लिखा होगा कि मैं चोर हूं। दुनिया में हर तरफ यही हो रहा है। आज जो अपराधी आसामी है, वही कल विचारक बन जाता है। इसीलिए जैसे-जैसे दिन बीतते गए, मुझे विश्वास होता गया कि तुम

लोगों का कहना ही ठीक था। मैं ही कहीं से गलत था।

विली ने कुछ रातें देहरादून स्टेशन के प्लेटफार्म पर ही विताईं, और मैं एक धर्मशाले में टिक गया। और खाना कहीं यहां-वहां खा-पी लेता था। कभी होटल में, कभी किसी रास्ते या फुटपाथ पर।

जेव में अगर रुपये हों तो यहां-वहां खाने में भी अजीव-सा एडवेन्चर है। आज तो कितना वढ़िया-वढ़िया खाना खाता हूं। महंगे-महंगे खाने पर जाने कितने-कितने रुपये खर्च हो जाते हैं। लेकिन उन दिनों रास्ते-फुटपाथों पर छुट-पुट खाकर जो सुख महसूस करता था, वह मैं आज तक नहीं भूल पाया हूं, दोस्त!

लेकिन मुझे सचमुच अचम्भा होता था, तव जव विली के नाम अचानक कहां-कहां से और जाने कैसे-कैसे टेलिग्राम पहुंचते थे। विली भी जाने किस-किस के नाम टेलिग्राम भेजता था। लेकिन उन टेलिग्रामों की भाषा मेरी समझ में नहीं आती थी। उसमें कभी विली की सेहत की खवर होती थी,कभी किसी कुत्ते के मौत की सूचना होती थी।

ये टेलिग्राम कभी कलकत्ते से आते थे, कभी मद्रास और कभी वम्वई से। मैंने अनुमान लगाया कि विली की तरह असंख्य हिप्पी हिन्दुस्तान की मिट्टी पर विखरे हुए हैं। उनमें से हर कोई हर किसीसे सम्पर्क-सूत्र वनाए हुए है।

वे लोग असल में वाहर से जितने वेहिसावी और लापरवाह दिखते थे, वैसे थे नहीं। अगर वनियाइन चीथड़े-चीथड़े हो गई है, तो वही सही। जूते नहीं हैं, तो नंगे पांव ही चल रहे हैं—कोई परवाह नहीं है। लेकिन मेरे लिए यह सम्भव नहीं था। मेरे पहनने के लिए उन लोगों ने एक जोड़ी खूवसूरत जूते खरीद दिए थे। मैंने अच्छा-सा पैण्ट-शर्ट भी खरीदा था। कभी-कभी विली ही मुझे किसी अच्छे होटल में ठहर जाने का आदेश देता था।

विली कहता था, "जरूरत हो तो वड़े-वड़े लोगों से भी मेल-मुलाकात करनी होगी। उन्हें खाने और शराव पीने की दावत भी देनी होगी। तभी तो उनकी जुवान से वातें उगलवा सकोगे।"

मैंने पूछा, "अगर वे लोग पूछ वैठें कि मैं क्या काम करता हूं; तो क्या जवाव दूंगा।"

"तुम कहना कि तुम राइटर हो यानी किताबें लिखते हो। यही सबसे सुरक्षित धन्धा है। उसके बाद तुमसे कोई यह पूछने नहीं जाएगा कि तुमने कौन-कौन-सी किताबें लिखी हैं। मुझे ही देखो, मुझसे जब भी कोई पूछता है तो मैं अपने को जर्नलिस्ट बताता हूं। अब मैं अमेरिका के किस अखबार का रिपोर्टर हूं, यह जानने की उत्सुकता किसे होगी? इन सब प्रोफेशन में सातों खून माफ होते हैं।"

बहरहाल मैं भी योजनानुसार उन सब जगहों पर आने-जाने लगा। हुंह! राइटर! दुनिया में जाने कितने हजारों-हजार लेखक भरे पड़े हैं, और हर कोई विख्यात लेखक हो, यह भी जरूरी नहीं है। मैं भी एक अख्यातनामा लेखक बन गया। मानो मैं विश्व-परिदर्शन को निकला हूं और प्लाट की तलाश में तरह-तरह के लोगों से मिलता-जुलता हूं या फिर विश्व-भ्रमण पर निकला हूं।

लेकिन देहरादून में हमारा धन्धा ठीक तरह जम नहीं पाया। हां, इसी बहाने दूसरों के रुपयों के बदौलत मेरा थोड़ा-बहुत देश-भ्रमण जरूर हो गया।

बिली ने कहा, "चलो, अब यहां और नहीं रहेंगे। अब मद्रास की तरफ चलें।"

चलो, यही चलो। मेरा क्या जाता है? मेरे पैसे तो खर्च नहीं हो रहे थे? न मेरा कोई नुकसान ही हो रहा था। इसके अलावा, औरों की तरह मुझे आगे-पीछे का भी कोई मोह नहीं था। यह बात बिली को भी ज्ञात थी। वह जानता था कि मेरे न तो बीवी-बच्चे हैं, न घर-द्वार। मेरा कहीं, कुच्छ नहीं है!

दरअसल यही बात मेरी सबसे बड़ी खासियत बन गई। किसीके होने का अर्थ था बन्धन! किसी तरह का बन्धन न होना ही आजाद मर्द का लक्षण है। मैं भी बन्धन-मुक्त आजाद पुरुष था।

उन दिनों अगर मेरी मौत भी हो जाती तो बिली पर इसका कोई दोष-दायित्व नहीं होता। वे लोग मुझे यूं ही लावारिस फेंककर सात समुद्र तेरह नदी पार, अपने देश की तरफ चल देते।

खैर, ऐसे ही एक दिन हम लोग मद्रास जा पहुंचे। स्टेशन पर उतरने के पहले ही मैं उन लोगों से अलग हो गया।

विली ने कहा, "तुम्हें हम लोगों के साथ देखकर, लोगों को हम पर भी सन्देह हो जाएगा···"

मैं मद्रास के एक मशहूर होटल में ठहर गया। लेकिन मुझे उनका कोई अता-पता नहीं मालूम था।

खैर, मैं होटल में ठहर गया। अचानक एक दिन मेरे नाम एक टेलिग्राम आ पहुंचा। लिखा था—'रेस-ग्राउण्ड के सामने मुझसे मुलाकात करो।—विली···'

लेकिन मुझे तो वहां के रेस-ग्राउंण्ड का पता भी नहीं मालूम था। खैर, पता-ठिकाना लेकर मैं उसी दिन रेस-ग्राउण्ड के गेट पर जाकर खड़ा हो गया। अभी शाम नहीं हुई थी, लेकिन लोगों की भीड़ धीरे-धीरे बढ़ने लगी थी।

अचानक अपनी पीठ पर किसीका स्पर्श पाते ही मैंने पीछे मुड़कर देखा। मेरी निगाह एक अपरिचित व्यक्ति पर जा पड़ी।

उस आदमी ने पूछा, "आप विली को खोज रहे हैं?"

"जी हां! आप कौन हैं?"

"आपका नाम टी० राय है न?"

"जी हां!"

"तब आप मेरे साथ चलिए···"

मैं उस आदमी के पीछे-पीछे चल पड़ा। वह आदमी मुझे शहर के किसी कोने में ले गया और सामने एक गली की तरफ इशारा करके कहा, "आप अन्दर चले जाइए।"

सामनेवाले मकान की बगल से एक गली अन्दर की तरफ चली गई थी। उस गली के बिल्कुल आखिरी छोर पर एक मकान दिखाई दिया। मकान का दरवाजा खुला हुआ था। अचानक वहां विली बैठा हुआ दिखाई दे गया और मेमसाहब मेज पर लेटी हुई थीं।

विली ने मुझे देखते ही कहा, "देखो, मैंने यह मकान तीस रुपये महीने किराए पर ले लिया है।"

मैंने एक बार निगाह घुमाकर पूरे कमरे को अच्छी तरह देखा। कमरे में न तो कोई फर्नीचर था, न बिस्तर। सिर्फ एक फटी-पुरानी चटाई बिछी हुई थी। उसीके ऊपर मेमसाहब सोई हुई थीं।

गजब है! रुपया कमाने के लिए ये लोग कितनी तकलीफें झेल सकते हैं; यह अपनी आंखों से देखे बिना समझने का कोई उपाय नहीं है। अब तक मेरी धारणा थी कि हमारे देश में शायद सिर्फ मारवाड़ी लोग ही असली दु:ख-तकलीफें झेल सकते हैं। लेकिन असल में ये लोग ही सच्चे मारवाड़ी हैं।

मैं भी चटाई के एक किनारे जाकर बैठ गया।

मैंने अपनी तरफ से पहला सवाल किया, "वह आदमी कौन है, जो मुझे यहां बुलाकर लाया है?"

बिली ने बताया, "वह नरसिंहम है। इस नरसिंहम को मैंने ही जुटाया है। जाने क्यों मेरा मन कहता है कि उसके द्वारा हमारा बहुत-सा काम सिद्ध होगा।"

"वह तुम्हें कहां मिला था?"

"यूं ही रास्ते पर घूमते-घामते मिल गया था। तुम्हारी तरह उसका भी कोई नहीं है।"

मैंने दुबारा जानना चाहा, "उससे तुम्हारा कौन-सा काम सिद्ध होगा?"

"वह यहां की भाषा जानता-समझता है, इसीलिए उसे ले लिया है। उससे मैंने अपने काम-काज के बारे में भी थोड़ा-बहुत जिक्र किया था। यह घर मुझे उसीने जुगाड़ दिया है..."

"अगर कहीं वह तुम्हारी सारी बात उजागर कर दे?"

"अरे, उसे मैंने मुट्ठी-भर रुपया खिलाया है। भविष्य में और अधिक देने का वादा किया है। सो वह, रुपये के लिए हमारा काम जरूर करेगा। सुनो, यहां लोग बेहद गरीब हैं। जिस देश के लोग गरीब होते हैं, वे लोग रुपये के लिए सब कुछ कर सकते हैं। अरे, भइया, रुपया तो उनके लिए भगवान है! भगवान!"

"वह हम लोगों की क्या सहायता करेगा?"

"क्यों ? हर तरह की सहायता करेगा । वह बता रहा था कि उसका घर चिंगलीपट में है। वहां के मन्दिर से वह हमारे लिए अनगिनत मूर्तियां चुराकर ला सकता है। शायद वहीं कहीं उसका अपना घर भी है। तुम उससे बातचीत करके सारी बातें तय कर लो। इस वक्त वह रास्ते पर खड़ा-खड़ा शायद तुम्हारी ही राह देख रहा है। मैं नहीं जाऊंगा। मुमकिन है मेरे बाहर निकलने पर, कोई मुझे देख ले। लोगों को हम पर सन्देह हो जाएगा। तुम्हारा जाना ही बेहतर है। तुम भी इण्डियन हो और वह भी। किसीको शक भी नहीं होगा—"

मैं उसकी बात सुनकर बाहर निकल आया।

मैंने देखा नरसिंहम सच ही बाहर खड़ा मेरी प्रतीक्षा कर रहा था।

मुझे अपनी ओर बढ़ते देखकर वह मेरी तरफ बढ़ आया।

मैंने पूछा, "तुम्हारा अपना घर भी क्या चिंगलीपट में है ?"

"येस, सर !"

नरसिंहम अतिशय विनम्र और शरीफ लगा। उसकी भाषा शायद मेरी समझ में न आए, इसीलिए उसने मुझसे अंग्रेजी में ही बात शुरू की।

मुझे उसने जो कुछ बताया उससे भी यही अन्दाजा लगा कि वह हमारे लिए काफी सहायक सिद्ध होगा। चिंगलीपट से महाबलिपुरम् के बीच अनगिनत गांव थे। वहां छोटे-छोटे अनगिनत मन्दिर थे। वहां की ढेर-ढेर मूर्तियां लाकर वह हमें सौंप सकता था।

अन्त में उसने कहा, "लेकिन इसके लिए मुझे रुपया चाहिए, हुजूर !"

"हां, हां, रुपया भी मिलेगा ! जरूर मिलेगा ! रुपया बिना भला तुम काम ही क्यों करोगे ? हां, तो तुम्हें कितना रुपया चाहिए ?"

नरसिंहम की अपेक्षाएं बेहद मामूली थीं। उसने कहा, "पांच सौ रुपये।"

"चलो, दे दूंगा। लेकिन देखो, यह बात कहीं खुल न जाए।"

"नहीं, सर, अगर बात कहीं खुल गई तो आप लोगों के साथ-साथ मुझे भी जेल की हवा खानी होगी।"

"हां। काफी समझ-बूझकर काम करना। वैसे तुम करते क्या हो?"

"कुछ भी नहीं करता, सर! बिल्कुल वैगाबाण्ड हूं! एकदम आवारा! करीब पन्द्रह साल पहले मैं नौकरी की तलाश में शहर आया था। लेकिन कहीं काम नहीं मिला, सर! मैं बहोत गरीब आदमी हूं, सर! मेरा इस दुनिया में कोई नहीं है, सर! देखिए न, रुपये बिना मैं शादी तक नहीं कर पा रहा हूं।"

"ठीक है! ठीक है! अच्छा बताओ, तुम हमें चिमलीपट कब ले चल रहे हो?"

"जिस दिन सर का आर्डर होगा, उसी दिन चल दूंगा। अगर आप कहें तो अभी चल दूं।"

"पहले एक बार वह जगह देख तो आऊं कि कैसी है?"—थोड़ी देर रुककर दुबारा पूछा, "वहां तुम्हारी किसीसे जान-पहचान है? मैं वहां जाकर ठहरूंगा कहां?"

"आप होटल में ठहर जाइएगा, सर! मेरी चिन्ता छोड़ दीजिए। पन्द्रह साल हुए मैं गांव त्यागकर चला आया था। इतने दिनों बाद शायद अब मुझे कोई पहचान भी नहीं पाएगा। खैर, मुझे न पहचाने तो बेहतर है। मैं वहां भिखारी की तरह रह लूंगा, ताकि लोगों को मुझ पर शक न हो…"

"लेकिन तुम मन्दिर के पंडित-पुरोहितों से बातचीत कर लोगे न?"

"वहां के एक पुरोहित की बेटी से मेरा परिचय तो था, लेकिन कौन जाने अब वह मिलेगी भी या नहीं। मुमकिन है अब तक उसका ब्याह भी हो गया हो। पन्द्रह साल पहले की बात है न, सर!"

"तुम्हें उसका नाम याद है?"

"जी हां, सर! उसका नाम रम्भा था। अगर वह मिल गई तो हमें कोई असुविधा नहीं होगी। वह अभी भी वहीं है या शादी-ब्याह करके ससुराल चली गई, यह तो वहां जाकर ही पता चलेगा…"

"ठीक है। तुम खा-पी लो। मैं भी खाना-पीना निबटाकर तुम्हारे

साथ निकल चलता हूं।"

"खैर, सारा इन्तज़ाम यथावत् हो गया। मैंने नरसिंहम को पांच रुपये और थमा दिए। वह मुझे सलाम ठोंककर खाने चला गया।

सुनो, भाई, यहां की ज़िन्दगी बेहद अजीबोगरीब है। तुम सब बंधी-बंधाई ज़िन्दगी जीते हुए, बेहद शान्त-शिष्ट भाव से सिर उठाकर चलने की कोशिश कर रहे थे। लेकिन देख लो, तुम लोग न तो चैन पा सके, न सिर उठाकर चल सके। बहुत हुआ तो हज़ार-दो हज़ार तनखा पाने लगे हो। लेकिन सच बताओ, बस, इतने से ही तुम्हारा दुःख-दर्द मिट जाता है ? सो अगर दुःख-दर्द ही नहीं मिटा तो हज़ार-दो हज़ार रुपये लेकर बेकार अपना हाथ क्यों काला करूं ? जब लेना ही है, तो लाख-दो लाख लूंगा। इसके लिए अगर अपनी जान भी खोनी पड़े, तो भी मंजूर है। कम से कम ज़िन्दगी तो मनचाहे ढंग से जी लूंगा। दरअसल ज़िन्दगी जीना ही हर किसीका मकसद है। अगर यह सच है तो ज़िन्दगी जीने का एकमात्र साधन सिर्फ रुपया है। इसलिए मैंने रुपया कमाना ही अपने जीवन का चरम लक्ष्य बना लिया।

खैर, नरसिंहम की बातें, जब मैंने विली को बताईं तो विली ने कहा, "अपने साथ काफी रुपया ले जाना। वहां जाकर जाने कब कौन-सी आफत-विपत में फंस जाओ, कहा नहीं जा सकता।"

यह कहकर उसने मेरे हाथ पर दो हज़ार रुपये रख दिए। मैं रुपये लेकर अपने होटल में लौट आया। खाना-पीना निपटाकर, कमरे में ताला लगाकर मैं निकल पड़ा। नरसिंहम मेरे होटल के गेट के बाहर ही खड़ा था। मुझे देखकर वह आगे बढ़ आया।

मैंने पूछा, "क्यों, यहां से कैसे चलेंगे ?"

"टैक्सी में तो बहुत रुपये लग जाएंगे, सर! यहां से करीब पच्चीस-तीस माइल है। काफी रुपये चार्ज करेगा···"

'खैर, अब चाहे जितना भी चार्ज करे, देना ही होगा। कम से कम वक्त तो बचेगा।"

टैक्सी ले ली गई। टैक्सी पर सवार होकर नरसिंहम मन ही मन गद्‌गद हो उठा। उसके हाव-भाव से यही जाहिर था, मानो वह जिन्दगी में कभी टैक्सी पर नहीं चढ़ा। टैक्सी के अन्दर आराम से पीठ टिकाकर बैठते ही उसने टैक्सी-ड्राइवर को उस जगह का पता-ठिकाना बताकर चलने का निर्देश दिया।

मैं मन ही मन सोच रहा था, नरसिंहम की हालत मेरी ही तरह है। वह मेरी जिन्दगी की नई शुरुआत थी और सिर्फ जिन्दगी की ही नहीं, जवानी की भी शुरुआत थी। उस उम्र में उत्साह और भविष्य दोनों ही बेहद तीव्र भाव से सजग हो उठते हैं। सामने जितनी दूर-दूर तक आखें फैलाकर देखो, *सिर्फ आशा और आशा*···*!* हां, आशा पनपती है कि अभी जितना है, उससे और अधिक रुपया होगा; और तरक्की होगी, और-और सुख बढ़ेगा। दरअसल हम सब जाने किस अपेक्षा में यूं दौड़ते चले जाते हैं। सचमुच मैं आज भी उसका कोई अर्थ नहीं खोज पाया हूं। उस दिन से मेरी भी जो दौड़ शुरू हुई थी, आज भी ठीक उसी रफ्तार से दौड़ता जा रहा हूं, लेकिन, दोस्त, जिन्दगी का कोई सार्थक अर्थ आज तक मेरे हाथ नहीं लगा। आखिर इतने रुपये मैं क्यों कमाता हूं? किसके लिए कमाता हूं? कभी-कभी ये सारे सवाल मेरे दिमाग में ताबड़तोड़ करते हैं, लेकिन फिर भी अपनी भाग-दौड़ नहीं रोक पा रहा हूं।

अपनी विगत कहानी सुनाते-सुनाते तापस अचानक चुप हो गया। जिस तापस को हम लोग सरल और अबोध समझकर हमेशा उसकी उपेक्षा करते आए थे, वह कभी इतना बुद्धिमान साबित होगा, इसकी हम लोगों ने कल्पना भी नहीं की थी। शायद ऐसा ही होता है। घर की सीमाओं से बाहर निकलकर इन्सान शायद इसी तरह अपने को पहचानना सीखता है। अपने को पूरी तरह पहचान लेने के बाद ही वह अपने आस-पास की दुनिया को समझ पाता है।

तापस ने अपनी कहानी आगे बढ़ाते हुए कहा—थोड़ी देर बाद हम लोग चिंगलीपट जा पहुंचे। अपने घर से निकलकर इतनी दूर यात्रा

करने का मेरा यह पहला मौका था।

नरसिंहम ने टैक्सी से उतरते हुए कहा, "टैक्सी चढ़ने में बहुत मजा आता है, सर।"

"मजा तो आता ही है वर्ना लोग क्या यूं ही इतने सारे रुपये खर्च करते हैं?"

"इसीलिए तो, सर, मेरा भी रुपया कमाने का मन करता है।"

"ठीक है! तुम्हें रुपया मिलेगा।..."

"सर, पहले मैं जाकर देख आऊं। यहां रम्भा है या नहीं...।"

नरसिंहम ने मुझे एक छोटे-से होटल में ठहरा दिया। होटल यानी बस, नाममात्र ही का होटल। टिन के छाजन के नीचे कुछेक कमरे और सामने की तरफ ढाबा। तीस रुपये महीना किराया। कहां मद्रास का वह साहबी होटल और कहां यह सड़क का सस्ता-सा होटल। खैर, मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता था। मैं भी इत्मिनान से वहीं जम गया।

नरसिंहम थोड़ी देर बाद ही लौट आया, "सर, रम्भा अभी नहीं है।"

"चलो, अच्छा ही हुआ।" यह सूचना पाकर मैं जरा निश्चिन्त हो आया।

लेकिन नरसिंहम वहीं खड़ा रहा, शायद किसी दुविधा में पड़ा था।

"क्यों, कुछ कहना चाहते हो?"

"सर, हम लोग अगर एक काम करें तो हमारे काम में सहूलियत हो जाएगी। अभी-अभी मुझे खबर मिली है, सर, कि रम्भा पर एक मुसीबत आ पड़ी है। अगर हम उससे अपना काम निकलवाना चाहते हैं, तो उसे उस मुसीबत से छुटकारा दिलाना होगा। आप उसका उद्धार करें, तो सारा काम बन जाएगा।"

"कैसी मुसीबत?"

"अगर हम रम्भा को उस मुसीबत से छुटकारा दिलवा दें तो उसे हम जो-जो कहेंगे, वह करेगी। वह पुरोहित जी की इकलौती बेटी है। इस मन्दिर के पूजा-पाठ, काम-काज बराबर वही करती है। लोगों की तरफ से भी उसे मन्दिर में आने-जाने की छूट है। हर कोई उसपर

विश्वास करता है···।"

"लेकिन उसपर मुसीबत कौन-सी आ पड़ी है ?"

"बात यह है कि उसके बच्चा होनेवाला है। मेरा मतलब है रम्भा प्रिगनेन्ट है।"

मुझे लगा नरसिंहम का सिर फिर गया है। विनी ने यह कैसा आदमी मेरे साथ लगा दिया। यह आदमी कहीं से भी सीधा-सादा नहीं लगता। इन सब मामलों में अगर कहीं फंस गए तो अन्त में खून के जुर्म में गिरफ्तार कर लिए जाएंगे। खून के जुर्म से चोरी का जुर्म कई गुना बेहतर है।

मैंने कहा, "भला उसके लिए हम लोग क्या कर सकते हैं ?"

"रम्भा की तो शादी भी नहीं हुई है, सर! इधर वह कुंवारी है, उधर वह मां बननेवाली है···गांव में तो बवेला मच जाएगा।"

"अरे, जो आदमी असली अपराधी है, अगर वह रम्भा से विवाह कर ले, तो सारी मुसीबत अपने आप दूर हो जाएगी। वह भला आदमी कहां चम्पत हो गया ?"

"जी, अगर यह सम्भव होता तब तो खैर कोई झमेला ही नहीं उठता। लेकिन अब तो वह आदमी ही रम्भा से ब्याह करने को राजी नहीं है।"

मैं अजीब मुसीबत में फंस गया। अगर मुझे इस आफत का जरा भी आभास होता तो उतनी दूर से विगलीपट आता ही नहीं।

"अब इन सब झमेलों में तुम हमें क्यों फंसा रहे हो, नरसिंहम ? हम लोग इस तरह के केसों में हाथ भी नहीं डालना चाहते। बेकार में तुम तो फंसोगे ही, हमें भी फंसाओगे। ऐसा करो, तुम कोई और पार्टी देखो।"

"आप इतना डर क्यों रहे हैं, सर ? एक बात बताइए, ऐसी पार्टी समूचे मद्रास-भर में आखिर कितनी मिलेंगी ? जितनी मूर्तियां इस लड़की की मदद से मिल सकती हैं, उतनी और कोई नहीं दिलवा सकता। रम्भा की तरह चालाक-चतुर लड़की आपको पूरे साउथ इण्डिया में एक भी नहीं मि

"अच्छा, तो मुझे क्या करना होगा ?"

"सर, आप लोगों के पास तो रुपयों की कमी नहीं है। ढेर-ढेर रुपये हैं। आप उस महादेवन के साथ रम्भा का व्याह करवा दीजिए न।"

"यह महादेवन कौन है ?"

"जिस आदमी ने रम्भा का सर्वनाश किया है...।"

"लेकिन महादेवन भला मेरी बात क्यों मानने लगा ?"

"मानेगा सर, अलबत्त मानेगा। आपके कहने भर की देर है। वह रम्भा से ज़रूर व्याह कर लेगा।"

मैं गहरी चिन्ता में पड़ गया। मैं न रम्भा को जानता हूं, न महादेवन को। यह उनकी व्यक्तिगत समस्या है। मैं तो यहां किसी और काम से आया था। उन लोगों से मेरा क्या वास्ता ? मेरी बात आखिर वे क्यों मानने लगे ?

अचानक नरसिंहम ने पूछा, "सर, मैं महादेवन को यहां बुला लाऊं ? वह यहीं-कहीं पास में ही रहता है।"

"वह करता क्या है ?"

"करेगा क्या, सर ? बिल्कुल आवारा है। मेरी तरह वह भी सिर्फ आवारागर्दी करता है। उसके पास रुपया नहीं है, इसीलिए वह रम्भा से व्याह भी नहीं कर पा रहा है।"

"और रम्भा ? वह क्या महादेवन से व्याह करने को राज़ी है ?"

"भला वह क्यों नहीं राज़ी होगी, सर ! अगर उसका व्याह नहीं हो पाया तो वह मारे शर्म के आत्महत्या कर लेगी...।"

"अच्छा, पहले तुम रम्भा को ही बुला लाओ। मैं सीधे-सीधे उससे ही बात कर देखूं।"

उस वक्त मेरी जो मनःस्थिति थी, उसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। इधर मैं रुपये के चक्कर में जाने किस सुदूर प्रदेश में टक्करें खा रहा था और उधर एक निपट अनजान औरत की पारिवारिक समस्या मिटाने की ज़िम्मेदारी भी मुझपर आ पड़ी थी। मुझे इन सब झमेलों में पड़ने की ज़रूरत ही क्या थी भला ?

एक बार यह भी मन मे आया कि साहब को टेलिग्राम देकर बुला लूं या फिर इस नरसिहम की ही छुट्टी कर दूं। उससे साफ-साफ कह दू कि तुमसे कोई काम नही होगा।

लेकिन काफी उधेड-बुन के बाद भी मैं कुछ तय नही कर पाया।

अन्त मे एक दिन रम्भा को ही अपने होटल में बुला भेजा।

शुरू-शुरू मे मुझे यह शक भी हुआ था कि हो सकता है रम्भा नाम की कोई लडकी हो न हो। नमूची घटना नरसिहम की मनगढन्त कहानी हो। सम्भव है वह हम लोगों को चकमा देकर कुछ रुपये ऐंटने की कोशिश में हो। लेकिन मेरा ख्याल गलत साबित हुआ। रम्भा को देखकर मैं चकित रह गया, दोस्त! इस समाज में भी इतना रूप? मैंने इस बात की कल्पना भी नही की थी। मेरे सामने वह लड़की थर-थर काप रही थी।

नरसिहम ने कहा, "देखो, डरने की कोई बात नही। तुम साहब से अपनी सारी बात खोलकर कह दो। साहब जो कहेंगे वह तुम करोगी न? हमारा राज किसीके सामने खोलोगी तो नही?"

नरसिहम अपनी भाषा में बातें कर रहा था। उसका एक भी शब्द मेरी समझ में नहीं आया।

उसने टूटी-फूटी अंग्रेजी में मुझे भी अपनी बातों का हवाला देते हुए कहा, "आप अंग्रेजी में ही बोलिए न, सर! रम्भा थोड़ी-बहुत अंग्रेजी भी समझ लेती है।"

मैंने उस लड़की से पूछा, "तुम जानती हो, तुम्हें क्या काम करना है? अपने काम के बारे मे तुमने सारी बात समझ ली है न?"

रम्भा ने सिर हिला दिया कि वह समझ चुकी है।

"तुम यह काम कर पाओगी?"

"हां, करूंगी।"

"तुम हमें कितनी मूर्तियां दे सकती हो?"

"आपको कितनी चाहिए? हमारे गांव में मन्दिरों की गिनती नहीं है। तमाम मन्दिरो में मूर्तिया भरी पड़ी हैं। सुन्दर-सुन्दर मूर्तियां नटराज की—अनन्त-शयन की! मेरे बापू बड़े मन्दिर के पुजारी है

इसीलिए यहां मुझे हर कोई पहचानता है। किसीको भी मुझपर शक नहीं होगा।"

रम्भा और नरसिहम अपनी ही जुबान में बातें कर रहे थे। नरसिहम उसका अंग्रेज़ी-अनुवाद करके मुझे समझाता जा रहा था।

रम्भा ने आखिरी सवाल किया, "एक-एक मूर्ति के लिए आप मुझे कितना देंगे ?"

"तुम कितना चाहती हो ?"

"एक सौ रुपया।"

"मिल जाएगा।"

"तो पहले सौ रुपया एडवान्स दीजिए।"

मैंने देखा उस लड़की को रुपये का बुरी तरह लोभ है। मेरे मन में जाने कैसा सन्देह जाग उठा। जो आदमी शुरू-शुरू में ही रुपयों की रट लगाए हुए है, उसकी नीयत के बारे में शक होना स्वाभाविक भी था।

"नहीं, एडवान्स रुपया नहीं दूंगा। तुम दाहिने हाथ से माल देना और बाएं हाथ से अपना रुपया ले लेना।"

"नहीं, रुपया मुझे पहले चाहिए।"

नरसिहम बगल में ही खड़ा था। मैंने उससे कहा, "तुम यह कैसी पार्टी लाए हो, जो काम किए बिना ही रुपयों के लिए शोर मचाने लगी ? रुपयों का इतना लोभ देखकर मुझे तो शक होने लगा है। यह लड़की मुझे भरोसे की नहीं लगी।"

"नहीं, सर, ऐसी बात नहीं है। सचमुच इसे रुपयों की सख्त ज़रूरत है। असली किस्सा तो मैं आपको बता ही चुका हूं। रम्भा को उसी काम के लिए रुपयों की ज़रूरत है।"

"तो यही बात वह मुझसे खोलकर क्यों नहीं कहती ?"

नरसिहम अपनी भाषा में रम्भा से धाराप्रवाह रूप में जाने क्या-क्या कहता गया। उसकी बातें सुनकर रम्भा ने एक बार मेरी ओर देखा, लेकिन मुझसे निगाहें मिलते ही उसने नज़रें झुका लीं और चुप ही रही।

"तुम क्या कहना चाहती हो, मुझसे कहो।"

"मुझे दो हज़ार रुपयों की ज़रूरत है।"

"क्यों ?"

उसने उसी तरह निगाहें झुकाए हुए कहा, "किसीको देना है।"

"किसे देना है, साफ-साफ बताओ, वर्ना मैं रुपया हरगिज नहीं दूंगा।"

"मैंने नरसिंहम को सब-कुछ बता दिया है। उसका नाम महादेवन है। महादेवन ने ही मेरा सर्वनाश किया है। उसका कहना है कि अगर उसे दो हज़ार रुपये मिलें, तो वह मुझसे ब्याह कर लेगा। दो हज़ार रुपये हों, तो वह एक घर किराए पर लेगा और मुझे ब्याहकर अपने घर ले जाएगा। इसलिए, इतने रुपयों का जुगाड़ मुझे करना ही होगा, क्योंकि गरज मेरी है ? अगर उसने मुझसे ब्याह नहीं किया तो मेरे बापू मुझे घर से निकाल देंगे।"

उसकी बातें सुनकर मैं वाकई चिन्तित हो उठा। वैसे मेरे मन में दुविधा भी थी कि कहीं वे दोनों मिलकर मुझे चकमा तो नहीं दे रहे हैं। उन दोनों को देखकर जाने क्यों मेरे मन में सन्देह जाग उठा था। शायद वे दोनों ही मुझसे झूठ बोल रहे थे।

थोड़ी देर बाद मैंने नरसिंहम से पूछा, "अच्छा, नरसिंहम, ज़रा तुम उससे पूछो तो, उसे कितने महीने चढ़े हैं ?"

नरसिंहम ने उससे पूछकर बताया, "तीन महीने…।"

तीन महीना सुनकर मैं ज़रा निश्चिन्त हो आया। यानी अभी कुछ वक्त हाथ में है। इस बीच मामले की जांच-पड़ताल की जा सकती है।

मैंने रम्भा से कहा, "अच्छा, तुम अब जा सकती हो। मैं तुम्हें बाद में खबर करूंगा।"

रम्भा चली गई। नरसिंहम किसी फैसले की उम्मीद में मेरी ओर देखते हुए वहीं खड़ा रहा। मुझसे कोई उत्तर न पाकर उसीने पूछा, "फिर मेरे लिए क्या हुक्म है, सर ?"

"महादेवन कहां रहता है ? उसे तुम मेरे पास ला सकते हो ?"

"हां, सर ! उसे अभी हाज़िर कर सकता हूं। मैं जाकर उसे अभी

बुला लाता हूं।"

इतना कहकर वह चला गया।

मैं बैठा-बैठा गहरी चिन्ता में डूब गया। मुझे अन्दर ही अन्दर परेशानी हो रही थी। यह कैसी मुसीबत में आ फंसा ? मैं क्यों फिजूल में इतनी बड़ी जिम्मेदारी ले रहा हूं ? साहब से सलाह किए बिना, इन्हें मैं कोई आश्वासन भी कैसे दे सकता हूं ? कहीं ऐसा न हो कि मैं किसी मुसीबत में पड़ जाऊं।

उस दिन मैंने बहुत देर तक इन्तजार किया। नरसिहम वापस नहीं लौटा। महादेवन भी नहीं आया।

उस दिन उनकी प्रतीक्षा करते-करते जब मैं ऊब गया, तो होटल से बाहर टहलने निकल गया। चिंगलीपट काफी छोटा-सा शहर था। शहर के बीचोंबीच एक विशाल मन्दिर था। मन्दिर का गोपुरम् ही करीब चार-मंजिले मकान जितना ऊंचा था। अनगिनत लोग अन्दर आ-जा रहे थे।

मेरा मन हुआ कि मैं भी एक बार अन्दर जाकर मूर्तियों पर एक सरसरी निगाह डाल आऊं।

लेकिन अगर कहीं किसीको मुझपर शक हो जाए ? यूं भी बंगाली होने की वजह से लोग मेरी तरफ घूर-घूरकर देख रहे थे। मन्दिर की मूर्तियां अगर चोरी हो गईं, तो पुलिस का शक मुझपर ही जाएगा।

अतः मैंने मन्दिर में न जाना ही बेहतर समझा।

होटल के मालिक ने मुझसे एक बार पूछा भी था, "आप करते क्या हैं, मिस्टर ?"

"मैं टूरिस्ट हूं।"

"टूरिस्ट तो खैर हैं, लेकिन काम क्या करते हैं ?"

"मैं राइटर यानी लेखक हूं।"

लेखक के पेशे के बारे में साहब ने ही मुझे बताया था कि परदेस में सबसे सुरक्षित उत्तर यही है।

होटलवाले ने दुबारा सवाल किया, "आप क्या अखबार के रिपोर्टर हैं ?"

"हांऽऽ—यही समझिए। लेकिन मैं कहीं नौकरी नहीं करता, बस, यही फर्क है।"

अखबार के रिपोर्टर और लेखक अलग-अलग किस्म के जीव हैं, यह फर्क समझने लायक बुद्धि उस होटलवाले में नहीं थी। इसीलिए मेरे आते ही उसने जोर-शोर से खातिर शुरू की और तरह-तरह के पकवान खिलाकर मुझे खुश करने की कोशिश करने लगा। मुझपर उसकी खास कृपादृष्टि थी। लेकिन उस होटलवाले को यह नहीं मालूम था कि ये सब खाने मुझे जरा भी नहीं सुहाते। मुझे खुश कर सके, ऐसा रसोइया इस दुनिया में शायद पैदा ही नहीं हुआ। असल में खाने-वाने के मामले में मेरी खास दिलचस्पी भी नहीं थी।

सच बात तो यह थी, दोस्त, कि उन दिनों मैं सिर्फ नकदराम या भक्त बन बैठा था। मैं पहलेवाला तापस नहीं रह गया था। वह तापस तो तभी बदल गया था जब उसने लखनऊ की कोठी छोड़ी थी। अब जो तापस था उसके मन में धन-दौलत, भोग-विलास और प्रतिष्ठा की चाह जाग उठी थी। और यह चाह कितनी तीखी थी, यह मेरे सिवा और कोई नहीं जानता था। हालांकि दुनिया में मैं बिल्कुल अकेला था और अकेले आदमी की जरूरतें भी आखिर कितनी-सी होती हैं ? उसके लिए तो तीन गज जमीन भर ही काफी है। उसका काम चल जाता है। क्यों, चल जाता है न ?

लेकिन, छोड़ो, ये बातें···

हां, तो उस शाम को जब मैं होटल लौटा तो नरसिंहन वहीं बैठा था। उसकी बगल में एक और आदमी भी बैठा था।

उसने उस आदमी का परिचय देते हुए कहा, "सर, यही है महादेवन ! आपने इसे बुला लाने को कहा था न ?"

मैंने महादेवन को अपने करीब आने का इशारा किया। उसकी हालत सचमुच बहुत खस्ता थी। बदन पर मैली-सी शर्ट। फटी हुई लुंगी। वह डरते-डरते मेरे पास आकर बैठ गया।

मैंने पूछा, "तुम रम्भा नामक किसी लड़की को पहचानते हो ?"

"हां, सर, पहचानता हूं।"

"कितने दिनों से पहचानते हो ?"

"बचपन से ही पहचानता हूं, सर ! वे लोग मेरे बगलवाले मकान में रहते थे।"

"तुम जानते हो, तुमने उसे कहीं का नहीं छोड़ा है ?"

महादेवन ने सिर झुकाकर कहा, "जानता हूं, सर !"

"अब अपनी भूल सुधारने का कोई उपाय भी सोचा है ?"

"मैं तो ब्याह करने को तैयार हूं, सर ! लेकिन आप ही बताइए, बीवी को खिलाऊंगा कहां से ? क्या मैं बीवी को खिलाऊंगा, क्या खुद खाऊंगा ? मेरे पास तो एक पैसे का भी रोजगार नहीं है···"

मैंने पूछा, "कितने रुपये होने से तुम उससे ब्याह कर सकते हो ?"

"क्यों, सर, वे रुपये क्या आप देंगे ?"

"मान लो, मैं ही दे दूं···"

महादेवन को सारी बात पहेली-सी जान पड़ी। उसने पूछा, "भला आप मुझे रुपये क्यों देंगे, सर ? इसमें आपका क्या स्वार्थ है ?"

"हां, मेरा स्वार्थ है। इस वक्त रम्भा मुसीबत में पड़ी है। अगर रम्भा को इस मुसीबत से छुड़ा लिया जाए, तो हमारा भी भला होगा। हम लोग जिस काम में लगे हैं, उसमें रम्भा जैसी लड़की की जरूरत है···"

लेकिन मैंने यह स्पष्ट नहीं किया कि रम्भा हमारे किस काम आएगी।

खैर, महादेवन ने मेरे चेहरे से ही अन्दाज लगा लिया कि मेरे पास काफी रुपया-पैसा है।

उसने थोड़ा सोच-विचार कर कहा, "अगर मुझे पांच हज़ार मिल जाएं, तो मैं रम्भा से ब्याह कर सकता हूं, सर !"

मैं उसकी बातें सुनकर ही समझ गया कि वह काफी शैतान आदमी है। हम लोगों की गरज़ देखकर वह भाव बढ़ाने की कोशिश कर रहा है।

मैंने कहा, "ठीक है ! मैं ज़रा सोच देखूं । तुम्हें नरसिहम से खबर भिजवा दूंगा । अब तुम जा सकते हो ।"

महादेवन के जाते ही मैंने नरसिहम से कहा, "मुझे तो यह आदमी नम्बरी शैतान लगा।"

नरसिहम ने कहा, "शैतान ही सही । लेकिन अगर रुपये मिल जाएं तो वह अपनी बात जरूर पूरी करेगा, सर ! आप देख लीजिएगा, वह हमें धोखा नहीं देगा । सचमुच, उसे रुपयों की बेहद जरूरत है ।"

मुझे उसकी बातों पर यकीन नहीं आया । रुपया बहुत गन्दी चीज है, मेरे दोस्त ! अब यह कौन बता सकता था कि नरसिहम खुद भी इसमें मिला हुआ नहीं है । मैंने एक काम कर डाला । मैं उसी दिन चिंगलीपट से मद्रास रवाना हो गया । उधर बिली मेरी प्रतीक्षा में दिन गिन रहा था ।

उसने मुझे देखते ही पूछा, "तुम्हारा काम कितना आगे बढ़ा, बाबू ?"

मैंने सारा हाल विस्तार से कह सुनाया ।

सारी बात सुनने के बाद साहब ने राय दी, "ना । उस महादेवन के बच्चे को रुपये हरगिज मत देना । मेरा मन कहता है, वह आदमी चीट है ।"

"लेकिन ऐसी हालत में रम्भा हमारे लिए काम नहीं करेगी ।"

साहब ने पूछा, "अच्छा, रम्भा कैसी लड़की है ? तुम्हें क्या लगता है; उससे हमारा कोई काम बनेगा ?"

"हां, रम्भा ही असली इन्सान है । साउथ इंडिया में काम करने के लिए हमें उस जैसी ही किसी लड़की की जरूरत होगी ।"

"तब, चलो, एक बार मैं भी चलकर उसे देख लूं···"

"हां, यही ठीक होगा ।" मैंने सोचा अगर साहब एक नजर देख लेता है तो मेरी जिम्मेदारी काफी कुछ कम हो जाती है ।

मैं साहब और मेमसाहब को लेकर दुबारा लौट आया । लेकिन इस बार चिंगलीपट के बजाय हम लोग महाबलिपुरम् के समुद्री तट पर एक दो मंजिले रेस्ट-हाउस में ठहरे और मैं नरसिहम को खबर देने चिंगलीपट रवाना हो गया । वहां से चिंगलीपट ज्यादा दूर नहीं था । नरसिहम को

भेजकर मैंने रम्भा को बुलवा लिया।

साहब रम्भा को अच्छी तरह परख लेना चाहता था। इसीलिए काफी देर तक उससे सवाल-जवाब करता रहा। दरअसल वह उसे ठोंक-बजाकर देख लेना चाहता था कि वह लड़की हमारा काम कर पाएगी या नहीं।

अन्त में उसने कहा, "अच्छा, अब तुम जरा बाहर जाकर बैठो। मैं थोड़ी देर में तुम्हें बुला लूंगा।"

नरसिंहम ने रम्भा को ले जाकर बाहर बरामदे में बिठा दिया। वहां कुर्सी-मेज बिछी हुई थी। वह और नरसिंहम बाहर प्रतीक्षा करने लगे।

रम्भा के जाते ही मैंने साहब की राय जाननी चाही, "क्यों? क्या ख्याल है?"

मेमसाहब ने कहा, "मुझे तो यह लड़की काफी काम की लगी। वह चेहरे से बेहद निष्पाप लगती है, और जिसका चेहरा-मोटरा और आंखें निष्पाप होती हैं, उसके द्वारा पाप-कर्म करना बेहद आसान होता है। तुम्हें भी हमने यही देखकर चुना था।"

साहब ने कहा, "हां, यह लड़की हमारे बहुत काम आएगी।"

कुछेक पल ठहरकर उसने किंचित मुस्कराकर कहा, "लेकिन एक बात है। मेरी राय में महादेवन को पांच हज़ार रुपया देना फालतू खर्च है। मेरे पास इससे बढ़िया प्रस्ताव है। ये पांच हज़ार रुपये तुम खुद ही क्यों नहीं ले लेते?"

मैंने अचकचाकर पूछा, "मैं?"

"हां बाबू, तुम! लेकिन पहले यह बताओ कि रम्भा तुम्हें पसन्द है?"

"मतलब...?"

"मतलब, तुम खुद ही रम्भा से ब्याह कर लो न!"

मैं साहब का प्रस्ताव सुनकर बिल्कुल आसमान से गिरा, "मैं ब्याह कर लूं? रम्भा से? लेकिन उसके गर्भ में किसी और का बच्चा है?"

"अरे, भाई, इसीलिए तो तुम्हें पांच हज़ार क्षति-पूर्ति के दे रहा

हूं। मगर मंजूर हो तो तुम्हें मैं पांच की जगह दस हज़ार रुपये भी दे सकता हूं।"

दस हज़ार रुपये! मेरे तन-बदन में जैसे झुरझुरी फैल गई। हालांकि अब ये बताना मुश्किल है कि रुपये की राशि सुनकर मैं हकबका गया था या रम्भा से ब्याह करने की बात सुनकर रोमांचित हो उठा था।

दरअसल जिस लड़की की किस्मत में ढेर-ढेर दुःख होता है, शायद उसीकी जिन्दगी मे ऐसी बुरी घड़ी आती है। वर्ना आज तक न मैं कभी किसी लड़की के प्रेम मे पड़ा, न कभी किसीसे ब्याह करने का ख्याल आया।

रम्भा के आते ही साहब ने पूछा, "तुम क्या महादेवन से ब्याह करने को राज़ी हो?"

"हां, मुझे कोई एतराज नही है..."

नरसिंहम साहब की बातों का अपनी भाषा में अनुवाद करके उसे समझाता गया।

साहब ने कहा, "लेकिन देखो, महादेवन तो लोफर है। बिल्कुल आवारा। अगर मैं उसे पांच हज़ार रुपये दे भी दूं तो वह ताड़ी पीकर उड़ा देगा। खामखाह तुम्हारे सिर मुसीबत आ पड़ेगी। तब तुम्हे खुद ही कमाना होगा। अपना पेट पालने के लिए मुमकिन है तुम्हे दूसरों के घर नौकरानी बनकर रहना पड़े।"

रम्भा साहब की बातें सुनकर चुप ही रही।

बिली ने दुबारा समझाया, "देखो, जिस आदमी ने तुम्हे एक बार तबाह किया है, वह दुबारा नही करेगा, इसका क्या भरोसा है? मैं पूछता हूं उस जैसे आदमी का तुमने भरोसा कैसे कर लिया? क्या तुम अब भी उससे प्यार करती हो?"

रम्भा ने कोई जवाब नहीं दिया। वह पूर्ववत् खामोश रही।

रम्भा की तरफ से नरसिंहम ने जवाब दिया, "नही, सर, रम्भा ने मुझे सच-सच बता दिया है। वह महादेवन को बिल्कुल प्यार नहीं करती

है, सर ! दरअसल वह मुझे ही प्यार करती है।"

विली ने चौंककर पूछा, "तुम्हें ? रम्भा तुम्हें प्यार करती है ?"

"हां, सर, रम्भा बचपन से ही मुझे प्यार करती है।"

साहब, मेमसाहब और मैं—हम तीनों ही महा मुश्किल में पड़ गए। अगर हमें मालूम होता कि ऐसी भी कोई स्थिति आ सकती है, तो हम पहले से ही कोई इन्तजाम कर रखते। अगर हमें इस बात का आभास हो जाता तो शुरू में ही नरसिहम की छंटनी कर दी जाती।

विली की निगाहें रम्भा के चेहरे पर पड़ गईं, "नरसिहम ने जो कुछ कहा, क्या वह सच है ?"

रम्भा भी शायद उसकी बातों का आशय समझ गई थी।

उसने कहा, "हां, सर, सच है।"

"लेकिन अगर तुम सचमुच नरसिहम को ही प्यार करती हो तो महादेवन का बच्चा तुम्हारे पेट में कैसे आया ?"

कुछेक पलों के लिए रम्भा को जैसे कोई जवाब ही नहीं सूझ पड़ा।

थोड़ी देर बाद उसने कहा, "महादेवन ने मुझको कहा था कि वह बहुत ऊंची तनखावाली नौकरी करता है, लेकिन उसने मुझसे झूठ बोला था।"

"और नरसिहम ? नरसिहम भी तो महादेवन जैसा ही लोफर है। उससे ब्याह करके क्या तुम सुखी होगी ?"

रम्भा की आंखों से आंसू ढुलक आए।

विली ने पूछा, "तुम रो क्यों रही हो ?"

नरसिहम ने कहा, "सर, यह मुझे बहोत प्यार करती है न, इसी-लिए इतना रो रही है। असल में यह खुशी के आंसू हैं।"

"तुम चुप रहो।"

विली ने नरसिहम को चुप करा दिया। वह समझ गया कि नरसिहम की उपस्थिति में रम्भा अपने मन की बात नहीं खोलेगी, अतः उसने नरसिहम से कहा, "तुम ज़रा कमरे से बाहर जाओ तो ! चलो, बाहर निकलो।"

नरसिहम किसी तरह भी बाहर जाने को राजी नहीं हुआ। उसने

कहा, "मैं क्यों बाहर जाऊं, सर ? मैं ही तो रम्भा को यहां लाया हूं।"

विली ने कहा, "हम लोग पहले रम्भा से सारी बात तय कर लें, तब तुम आ जाना। अभी बाहर जाओ…"

नरसिंहम किसी भी तरह बाहर जाने को राजी नहीं हुआ। उसके हाव-भाव देखकर यही लगा, मानो वह सच ही बुरी तरह डर गया है। वैसे उसके डरने की खास कोई वजह नहीं थी। उसे शायद यही भय था कि रम्भा कहीं उसके हाथ से फिसल न जाए।

हम अजीब गोरखधन्धे में फंस गए थे। जाने किस देश की एक अदद अनजान लड़की और एक अदद लड़के के गुपचुप प्यार के बीहड़ ताने-बाने में हम सब भी उलझते जा रहे थे। हम लोग गैर-कानूनी तरीके से रुपया कमाने के धन्धों में घूमते-भटकते रहते हैं। हमारी आमदनी के साथ दुनिया के सुदूर प्रदेशों के जाने कितने-कितने लोगों का भाग्य जुड़ा हुआ है। चुराई हुई एक-एक मूर्ति पर सत्तर-अस्सी लाख रुपयों का वारा-न्यारा होता था। जहां इतने ढेर-ढेर रुपयों का कारोबार चलता हो वहां किसके पास इतना वक्त था कि वह किसी लड़के-लड़की के सस्ते प्रेम के पीछे सिर-दर्द मोल ले।

हो सकता है, जिन्दगी में कभी बड़े बनने की नन्ही-सी उम्मीद रही हो, लेकिन बड़ा आदमी यानी दौलतमन्द बनने की लालसा मुझमें कभी नहीं जागी। यानी रुपये के जोर पर बड़े आदमी बनने की लालसा! लेकिन उन दिनों परिस्थितियां कुछ ऐसी थीं कि मैं क्रमशः किसी जाल में फंसता जा रहा था और रुपयों को ही भगवान मानने लगा था।

खैर रुपये के लिए ब्याह तो क्या शायद मैं मौत के कुएं में भी छलांग लगाने को प्रस्तुत था।

विली ने घुड़ककर कहा, "जाओ, निकलो बाहर…"

नरसिंहम ने भी उसी तरह गिड़गिड़ाते हुए जवाब दिया, "नहीं, मैं बाहर नहीं जाऊंगा।"

"बाहर नहीं जाओगे ? देखो, अगर तुम नहीं निकले तो मैं तुम्हें नौकरी से निकाल बाहर करूंगा।"

"अगर आप नौकरी से निकाल देंगे तो मैं भी पुलिस के सामने

आपका सारा भेद खोल दूंगा।"

"पुलिस के सामने तुम कौन-सा भेद खोलोगे, ज़रा सुनूं तो!"

"मैं पुलिस को बता दूंगा कि आप लोग स्मगलर हैं। मन्दिरों से मूर्तियां चुराकर विलायत भेजते हैं।"

साहब और मेमसाहब और मैं—हम तीनों ने यही महसूस किया कि नरसिंहम का दिमाग खराब हो गया है। हममें से किसीने भी यह नहीं सोचा था कि ऐसी मुसीबत में पड़ जाएंगे।

साहब ने मेरी ओर देखा, यानी वह मेरी राय जानना चाहता था।

लेकिन मैं क्या बोलता? नरसिंहम के सामने मैं कह भी क्या सकता था?

अचानक विली ने नरसिंहम से एक अजीब-सा सवाल किया, "अच्छा, तुम चाहते क्या हो? रुपया? रुपया लेकर क्या तुम सन्तुष्ट हो जाओगे? कितने रुपये चाहिए तुम्हें?"

नरसिंहम ने कहा, "मुझे रुपये नहीं चाहिए।"

"तब तुम आखिर चाहते क्या हो? रम्भा से व्याह करना चाहते हो?"

"नहीं..."

"तब? महादेवन से विवाह होने में तुम्हें कोई एतराज़ नहीं है। तुम खुद भी रम्भा से व्याह करने को राज़ी नहीं हो। ऐसे में रम्भा बिचारी क्या करे? इस मुसीबत से वह बिचारी आखिर कहां जाए?"

इतनी देर बाद नरसिंहम ने अपने मन की बात खोलकर कही, "असल में, रम्भा अपनी विपत्ति के लिए खुद ज़िम्मेदार है, सर! इसके लिए मैं कहीं से ज़िम्मेदार नहीं हूं। मैं तो इसे बताकर ही यहां से गया था कि मैं शहर जा रहा हूं। शहर से रुपये कमाकर लौटते ही व्याह कर लूंगा। लेकिन फिर भी यह महादेवन के झांसे में क्यों भरमा गई? महादेवन के साथ क्यों सोने गई? अब जैसा पाप किया है, वैसा भोगे!"

"लेकिन इससे व्याह करने में तुम्हें क्यों एतराज़ है?"

"एतराज़ इसलिए है कि इसके पेट में महादेवन की सन्तान पल

रही है। आप क्या सोचते हैं? महादेवन का बेटा मुझे 'बापू' कहकर बुलाए और मैं सह लूंगा?"

विली ने कहा, "ठीक है। ठीक है। रुपये की वजह से ही तुम उससे ब्याह नहीं कर पाए न? अगर मैं तुम्हें पांच हज़ार रुपये दे दूं तब तो तुम्हें उसके बेटे का बाप बनने में कोई आपत्ति नहीं होगी न?

नरसिंहम मानो किसी दुविधा में पड़ गया। कुछेक पल सोच-विचार कर उसने पूछा, "पांच हज़ार की जगह आप मुझे दस हज़ार रुपये नहीं दे सकते, सर?"

"ठीक है! चलो, दस हज़ार ही दे दूंगा। अब तो तुम उससे ब्याह करने को राजी हो न?"

"हां, सर, कर लूंगा!"

अचानक रम्भा चीख उठी, "नहीं। मैं इससे ब्याह नहीं करूंगी।"

रम्भा की बात सुनकर हम सब एकबारगी चकरा गए। हम सबकी आंखें उसकी तरफ उठ गईं। उसकी आंखों के आंसू सूख चुके थे। वह एकदम से तनकर खड़ी हो गई।

उसने कहा, "अगर अब यह मुझे ब्याहने को तैयार हो भी जाए तो भी मैं इससे ब्याह नहीं करूंगी।"

हम सब सकते में आ गए।

विली ने पूछा, "क्यों, अब तुम इससे ब्याह क्यों नहीं करोगी?"

"यह झूठा है। इसने मुझे धोखा दिया है।"

"अरे, ये क्या बात हुई? इसने तुम्हें कब धोखा दिया? बिचारा नरसिंहम ही तो इतना जोड़-तोड़ कर रहा है कि किसी तरह महादेवन से ही तुम्हारा ब्याह हो जाए। तुम दोनों सुखी होओ। नरसिंहम ही तो तुम्हें यहां ले आया। अगर नरसिंहम न होता तो हम लोगों से तुम्हारी जान-पहचान भी नहीं होती…"

"लेकिन इसने मेरे साथ बेईमानी की है…"

"बेईमानी? कैसी बेईमानी?"

"शहर जाकर यह एक छोकरी के पल्ले पड़ गया और उससे ब्याह भी रचा लिया…"

विली ने नरसिंहम की तरफ देखकर पूछा, "क्या यह सच है ? क्या सच ही तुमने किसी दूसरी लड़की से ब्याह कर लिया है ?"

नरसिंहम ने कहा, "नहीं सर ! ये बातें सरासर झूठ हैं। मैंने तो अभी तक ब्याह नहीं किया। रम्भा के अलावा मैंने कभी किसीको प्यार नहीं किया···।"

साहब विकट समस्या में उलझ गया। ये साहब और मेमसाहब सात समुन्दर तेरह नदी पार करके रुपया लूटने आए थे। किसको कितनी चोट लगती है, इस बात को लेकर उन्हें सिर खपाने की कोई गरज़ नहीं थी। वे लोग तो सिर्फ रुपया पहचानते थे। जब तक तुमसे उनका स्वार्थ-सिद्ध होता है वे तुम्हारी खातिर करेंगे, लेकिन जैसे ही तुम कमज़ोर या असमर्थ साबित होगे, तुमसे उनके सारे रिश्ते खत्म। तब तुम महज एक सिफर यानी शून्य-भर रह जाओगे।

दुनिया में जो लोग सिर्फ रुपया चाहते हैं, शायद उनसे बढ़कर नादान और कोई नहीं है। अब मुझे ही लो, न ! जिन दिनों मैं तुम लोगों के साथ था, मुझे रुपये की कभी हाय-हाय नहीं हुई; इसीलिए तुम लोग मुझे निरा बुद्धू समझते थे। अब मैं महसूस करता हूं कि दरअसल उन्हीं दिनों मैं अक्लमन्द था। लेकिन अब मैं सचमुच नादान और बेवकूफ बन गया हूं, क्योंकि अब मुझे सिर्फ रुपयों की रट लग चुकी है।

दरअसल इसके लिए अकेला मैं ही दोषी नहीं हूं। आज के ज़माने में यह कमज़ोरी हर किसीमें है। और भला इसी युग को क्यों दोष दूं ? यह कमज़ोरी तो हर युग के हर आदमी में रही है। इन्सान हमेशा से ही ज़मीन-जायदाद को लेकर आपस में कटता-मरता रहा है। जिन लोगों ने अर्थ को तुच्छ समझा है और परमार्थ को ही परम पदार्थ माना है, वे इन्सान के लिए सच्चे आदर्श के रूप में स्वीकृत और सम्मानित होते रहे हैं। जैसे—ईसा मसीह, बुद्ध, चैतन्य, साक्रेटीस, परमहंस। लेकिन मेरा इतना सौभाग्य कहां कि मैं उनकी तरह बन पाऊं ?

हालांकि आज मैं इतनी लम्बी-चौड़ी बातें इसीलिए कर पा रहा हूं, क्योंकि आज मैं भी पैसेवाला बन गया हूं। चूंकि मेरे पास रुपया है;

इसीलिए रुपयों के बारे में राय देने का मुझे हक है। लेकिन उन दिनों? उन दिनों तो मैं चुपचाप तुम लोगों की बातें सुना करता था, और सोचा करता था, जब मेरे पास भी ढेर-ढेर रुपये हो जाएंगे तो मैं भी कलकत्ते जाकर तुम सबको दिखाऊंगा। तुम लोग मुझे देखकर जल-भुन जाओगे। हां, मुझे यह सोच-सोचकर ही बहुत मजा आता था। हर वक्त मैं इन्हीं ख्यालों में डूबा रहता था। तुम्हीं बताओ, अगर मैं अपना धन-ऐश्वर्य अपने आत्मीय-स्वजन और बन्धु-बान्धवों को ही नहीं दिखा पाया तो ऐश्वर्यवान होने का क्या सुख?

साहब ने नरसिहम से कहा, "अच्छा, एक काम करो। तुम दोनों ही जरा बाहर और अकेले में बैठकर आपस में कोई फैसला कर डालो। उसके बाद मेरे पास आना···।"

साहब की बात सुनकर नरसिहम और रम्भा दोनों ही बाहर चले गए। हम लोग अन्दर ही बैठे रहे।

साहब ने मेरी ओर देखकर कहा, "तुम्हारा क्या ख्याल है? यह लड़की नरसिहम को प्यार करती है?"

मैंने जवाब दिया, "मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है।"

बिली की निगाहें मेमसाहब की तरफ घूम गईं। उससे भी उसने वही सवाल किया, "तुम्हें क्या लगता है, डालिंग?"

मेमसाहब ने जवाब दिया, "ये इण्डियन लोग अद्भुत जात हैं, बिली।"

"क्यों? तुम इन्हें अद्भुत जात क्यों कह रही हो?"

मेमसाहब ने कहा, "दरअसल ये लोग चाहते क्या हैं; यह ये खुद भी नहीं जानते। रम्भा अगर महादेवन को ही प्यार करती है तो रुपये क्यों मांग रही है? और अगर नरसिहम को प्यार करती है तो उससे ब्याह करने में उसे क्या एतराज है? असल में वह लड़की अपने मन की बात खुद भी नहीं जानती···"

मेमसाहब की तरह मुझे भी सारी घटना बिल्कुल पहेली-सी लग रही थी। मैं भी तो आखिर इण्डियन हूं। मैं ही भला क्या अपने को जानता हूं? क्या मैं बता सकता हूं कि मैं क्या चाहता हूं? हालांकि उन

दिनों मेरा यही ख्याल था कि अगर मेरे पास ढेर-ढेर रुपये हो जाएं तो मैं सुखी हो जाऊंगा। उन दिनों मैं सोचता था कि जिस दिन मेरे पास अटूट दौलत हो जाएगी, मेरी सारी चाहत पूरी हो जाएगी। अमीर होकर शायद मैं सुखी हो जाऊंगा।

लेकिन, दोस्त, उन दिनों मैं यह नहीं जानता था कि हमारी चाहत में भी मिलावट हो सकती है। खैर, मिलावट तो हर जगह थी, है और हमेशा रहेगी। हम लोग चावल-दाल, तेल में मिलावट को लेकर परेशान होते हैं। अखबारों में भी उस मिलावट के बारे में बढ़ा-चढ़ाकर लिखा जाता है। लेकिन मन ?

मन में भी तो मिलावट होती है। मन की चाहों में जो मिलावट होती है, उसके लिए हम कभी परेशान नहीं होते। हालांकि यह मिलावट इतनी खूबसूरत है कि इसका कहीं कोई जवाब नहीं है। चावल, दाल, तेल की मिलावट से तो फिर भी छुटकारा पाया जा सकता है, यानी हम कोशिश करें तो ये मिलावटें दूर भी कर सकते हैं, लेकिन मन की मिलावट ? उसे कैसे दूर करें ? आखिर यह कैसे समझ में आए कि हमारी कौन-सी चाहें असली हैं और कौन-सी नकली ?

हां, मेरे मन में काफी मिलावट थी, बन्धु। मेरे भीतर असली और नकली चाहें मिल-जुलकर एकाकार हो गई थीं। हां मैंने भी रुपया ही चाहा था।

खैर, मेरी बात तो बिल्कुल अलग है। लेकिन मेरी तरह क्या रम्भा ने भी रुपयों को ही सबसे बड़ा मान लिया था ? हालांकि कुछ ही दिनों बाद, जब मैं रम्भा से थोड़ा-बहुत घनिष्ठ हो गया तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो गई थी कि यह किस किस्म की लड़की है। लेकिन ये सब तो बहुत बाद की बात है। आदमी को दूर से देखकर उसके बारे में जो राय कायम की जाती है, उसके करीब आने पर अक्सर समूची राय बदल जाती है। जैसे कैमरे में दूर की तस्वीर कुछ और ही दिखाई देती है और करीब आने पर कुछ और।

काफी देर बाद बिली ने जुबान खोली, "बताओ, बाबू, क्या किया जाए ?"

मैंने जवाब दिया, "अब मैं क्या बताऊं ? नरसिंहम को तो मैं पहचानता भी नहीं था। तुमने ही उसे जुटाया था। अब यह फैसला भी तुम्हीं करो कि क्या करना है···"

विली ने कहा, "मद्रास के रास्ते में नरसिंहम से अचानक ही परिचय हुआ था। देखने-सुनने में वह आदमी काफी प्रमादग्रस्त है। खैर, आदमी अगर अभाव में न हो तो इस धन्धे में हाथ बंटाने ही क्यों आएगा ? उसीने बताया था कि यहां उसकी काफी जान-पहचान है।"

मैंने कहा, "लेकिन असल में वह जुआचोर है। तुम उसे नहीं पहचान पाए, साहब !"

"क्यों ? उसे जुआचोर क्यों कह रहे हो ?"

"मुझे तो लगता है कि वह उस पतुरिया के बहाने कुछ रुपये वसूल करना चाहता है।"

विली ने कहा, "लेकिन यह भी तो सम्भव है कि उसने जो कुछ कहा, सब सच हो। जब वह उस छोकरी को यहां रखकर, नौकरी की खोज में शहर गया, तब उसने सोचा होगा कि खूब सारे रुपये कमाकर वह अपने मुल्क लौट आएगा और उस छोकरी से शादी कर लेगा···।"

साहब समूची दुनिया घूमने के बाद हिन्दुस्तान आया था। उसका असली उद्देश्य रुपया कमाना था। इसके अलावा वह और कुछ नहीं चाहता था। लेकिन वह जानता था कि ढेर-ढेर रुपये कमाने के बाद भी, कभी-कभी मन के सवाल आदमी को उद्विग्न कर जाते हैं।

साहब ने कहा, "अब क्या करना चाहिए, बताओ न ?"

"पहले तो यह देखना होगा कि वे दोनों क्या करते हैं ?"

ठीक उसी समय बाहर किसीकी आवाज सुनाई दी। शोर-गुल सुनकर हम तीनों भागकर बाहर आए। नरसिंहम रम्भा का झोंटा खींचते हुए उसे पीट रहा था। साहब ने दौड़कर नरसिंहम के दोनों हाथ कसकर पकड़ लिए। उससे पूछा, "यह क्या कर रहे हो ? इसे मार क्यों रहे हो ?"

उस वक्त नरसिंहम गुस्से से फुफकार रहा था। उसे सम्हालना मुश्किल था। नरसिंहम ने कहा, "यह मुझे गाली दे रही थी। मैं इसका

खून कर डालूंगा।"

सचमुच बेहद अजीब परिस्थिति थी। इस बीच तमाशबीनों की पूरी भीड़ इकट्ठी हो चुकी थी। रम्भा नरसिहम के हाथों मार खाकर, आंचल की ओट में बिलख-बिलखकर रो रही थी। साहब ने उसे ही सम्बोधित करके पूछा, "तुम रो क्यों रही हो ?"

"इसने मुझे इतना मारा है कि···।"

"लेकिन तुमने इसे गाली क्यों दी ?"

रम्भा ने कहा, "गाली-गलौज भी पहले इसीने शुरू की थी।"

अब किसने किसको पहले गालियां दी थीं, यह तय करना मुश्किल था; क्योंकि मारपीट के समय हममें से कोई भी वहां मौजूद नहीं था।

साहब ने नरसिहम को सम्बोधित करके पूछा, "पहले तुम्हींने इसे गालियां दी थीं न ?"

नरसिहम गुस्से से हांफ रहा था। उसने कहा, "इसकी इतनी बड़ी हिम्मत कि यह मुझे चरित्रहीन कह गई। और आप जानते हैं, मैंने इसके लिए क्या-क्या किया है ? एक ज़माना था जब यह दाने-दाने को तरसती थी। इसके बाप को मन्दिर के पूजा-पाठ से जो दूध मिलता था, उसमें उनको पेट चलाना मुश्किल हो रहा था। उन दिनों मैंने ही उन्हें रुपये-पैसे, कपड़े-लत्ते और चावल वगैरह से मदद करके, भूखों मरने से बचाया। मैंने अपनी पुश्तैनी ज़मीन तक बेच दी। उन पैसों से इनके लिए ज़मीन खरीद दी, मकान बनवा दिया, ताकि इन लोगों को किसी तरह सिर छुपाने की जगह मिल जाए। रम्भा के बाप ने ही मुझसे मिन्नतें की थीं कि मैं इससे ब्याह कर लूं।"

हम लोग भीड़ में खड़े-खड़े उनकी दास्तान सुन रहे थे। इतने सारे लोग जो उनकी मुहब्बत के किस्से सुन रहे हैं, इस बात को लेकर नरसिहम या तमाशबीन दर्शकों के चेहरों पर शर्म या संकोच का कोई चिह्न नहीं था।

लेकिन मैं शर्म से गड़ा जा रहा था। मैंने आसपास जमा हुए लोगों से बाहर जाने का अनुरोध किया। मेरी दुत्कार सुनकर वे लोग न चाहते हुए भी, एक-एक करके बाहर निकल गए। रम्भा और नरसिहम

को अन्दर बुलाकर मैंने कमरे का दरवाजा बन्द कर लिया।

ज्वार लगभग शान्त हो चुका था। अब हम लोगों ने पहली बार रम्भा के चेहरे की तरफ गौर से देखा। मन्दिर के मामूली-से पुरोहित की लड़की। समूची जिन्दगी दरिद्रता और अभाव में बिता दी। पिता की तनखा कुल मिलाकर सिर्फ पांच रुपये महीने! हां, भूले-भटके कभी-कभार कुछ ऊपरी दान-दक्षिणा मिल जाती थी। चलो, यह भी मान लिया कि पिता ठहरे पुजारी आदमी! उनका काम महज पूजा-अर्चना करना था। शिव की आराधना में ही वे परम-तृप्ति पा लेते थे। शिव के चरणों में आत्मोत्सर्ग में ही उनकी परम-मुक्ति थी।

लेकिन रम्भा!

रम्भा का तो भविष्य था। उसकी अपनी निजी आशा-आकांक्षाएं थीं। जबसे उसने होश संभाला वह मन्दिर देखती आ रही थी। उनके ऐश्वर्य की चमक-दमक उसकी आंखों से छुपी नहीं थी। हां, उनकी भक्ति की ओर उसकी दृष्टि कभी नहीं गई। वह तो सिर्फ उनके जेवर, साड़ी, रूप-यौवन को निहारती रही।

कभी-कभार वह भी अपने बापू से मुंह खोलकर फर्माइश करती थी, "बापू, मुझे भी एक रेशमी साड़ी खरीद दो न!..."

"रेशमी साड़ी? क्यों, री? रेशमी साड़ियां तो अमीर औरतें पहनती हैं। हम लोग क्या अमीर हैं, बिटिया?"

उन दिनों रम्भा को खास अक्ल भी नहीं थी। वह फौरन सवाल करती थी, "तो तुम अमीर क्यों नहीं हुए, बापू?"

पिता हंसकर समझाने की कोशिश करता, "भगवान ने हमें जितना दिया है, हमें उसीमें खुश होना चाहिए, बिटिया।"

लेकिन रम्भा को इन तर्कों से नहीं समझाया जा सकता था। उसके मन में पाने और जीने की आकांक्षा क्रमशः तीखी होती गई। आखिर उनके पास भी ढेर-ढेर रुपये क्यों नहीं हैं? आखिर वे लोग भी पक्के मकान में क्यों नहीं रहते? आखिर वही क्यों फटी-पुरानी और गन्दी साड़ी पहने? दुनिया में सभी लोग जब ऐश-आराम में रहते हैं, एक अकेली वही क्यों दुःख तकलीफ सहने को जन्मी है?

•••

"उसके बाद ?"

उसके बाद रम्भा की उम्र बढ़ती गई। चिंगलीपट के लोग भी क्रमशः और धनवान बन गए। धान, चावल की दरें भी बढ़ती गईं। देश में कपड़ों की नई-नई मशीनें बैठाई गईं। उसके गांव के दर-दुकानों में खूबसूरत डिज़ाइनोंवाली रंगीन साड़ियों का अम्बर लगा रहता। मन्दिर में दर्शनार्थियों की संख्या भी क्रमशः बढ़ती गई। भगवान के चढ़ावे में भी वृद्धि हुई। पहले जहां कुल सौ-दो सौ रुपयों की आमदनी होती थी; अब पांच-पांच सौ रुपये आने लगे। लेकिन उसके बापू की तनखा जो पहले थी, वही अब भी रह गई, यानी कुल पांच रुपये। हां, भगवान के पुजारी को आखिर रुपयों की जरूरत भी क्या है ?

रम्भा उसी उम्र में खाना-वाना बनाने के मामले में अपना हाथ पक्का कर चुकी थी। उसके बापू तो हर समय अपने ठाकुर जी में ही मग्न रहते थे और बेटी दिन-भर घर सम्हालती थी। उसका सारा समय घर-गृहस्थी में ही बीतता था। उसका काम कभी खत्म होने को ही नहीं आता था। वैसे तो घर के नाम पर सिर्फ एक कोठरी ही थी, लेकिन इससे क्या हुआ ? दो मील दूर से पानी भी तो लाना पड़ता था। वह कौन लाता ?

उन्हीं दिनों उसकी मुलाकात नरसिंहम से हो गई। नरसिंहम से मिलकर रम्भा को जाने क्यों बेहद अच्छा-अच्छा लगता था। अब तो बहुत बार जब पानी की ज़रूरत नहीं भी होती थी, वह पानी लाने चल देती थी।

नरसिंहम ने ही एक दिन उससे पूछा, "तुम इतनी दूर पानी लेने क्यों आती हो, जी ?"

रम्भा ने कहा, "इतनी दूर आए बिना पानी कहां मिलेगा ?"

"क्यों, मन्दिर में ! तुम्हारे घर के पास जो मन्दिर है, वहां भी तो पानी है।"

"अरे, मन्दिर के कुंड में तो सिर्फ पीने का पानी मिलता है। पीने के पानी के अलावा क्या और किसी काम के लिए पानी की ज़रूरत नहीं पड़ती ?"

इसी तरह उनका परिचय हुआ। दरअसल पानी का प्रसंग तो महज बहाना-भर था, बातें करना ही मुख्य उद्देश्य था। उपलक्ष्य को प्रधान मानकर लक्ष्य-वस्तु की ओर हाथ बढ़ाना सचमुच बड़ी बात है। नरसिंहम भी अपनी लक्ष्य-वस्तु तक पहुंचने के कौशल से भली-भांति परिचित था।

लेकिन दुनिया का यह अकाट्य नियम है कि तुम्हारे मन में चाहे जितनी भी आन्तरिकता और अनुराग भरा हो, उसे गहरा करने के लिए एक और चीज की भी अपरिहार्य और अनिवार्य रूप से जरूरत पड़ती है। और वह है रुपया! नरसिंहम के जीवन में रुपयों का ही सर्वाधिक अभाव था।

शुरू-शुरू में रुपयों का प्रसंग चाहे न भी उठे, लेकिन एक-न-एक दिन वह प्रसंग निश्चित रूप से उठ खड़ा होता है। वैसे अनुराग अच्छी चीज है, शायद दुनिया की उत्तम चीजों में भी सर्वोत्तम! लेकिन अनुराग भी आखिर दूसरों पर निर्भरशील है! अनुराग की रोशनी निश्चित रूप से बुझ जाती है, अगर उसके पीछे रुपयों के तेल की ताकत न हो! अगर मैं अपने अनुराग का प्रमाण देना चाहता हूं तो मुझे कुछ न कुछ उपहार देना होगा। क्या उपहार दे सकता हूं? साड़ी! जेवर! और ये सब खरीदने के लिए आखिर रुपयों की ही जरूरत पड़ती है न?

इसीलिए नरसिंहम के दिमाग में भी रुपयों की बात घर कर गई। उसीने एक दिन प्रस्ताव रखा, "मैं शहर जाऊंगा।"

"शहर? कौन-सा शहर?"

"मद्रास!"

नरसिंहम ने वचन दिया कि वह शहर जाकर नौकरी करेगा। वहां से खूब सारी दौलत इकट्ठा करके वह लौट आएगा और रम्भा से विवाह करेगा। उसे सुखी बनाएगा। उतने दिनों तक वह उसकी प्रतीक्षा करे। वैसे अमीर बनना कोई मुश्किल काम नहीं है, खासकर शहरों में। वहां रुपये बिखरे रहते हैं, बशर्ते आदमी अपनी बुद्धि खर्च करके उन्हें बटोरना जानता हो।

इस तरह पांच वर्ष पूर्व नरसिंहम रुपये कमाने शहर चला आया।

दरअसल उसे शहर नहीं, मगरमच्छ कहना चाहिए। मगरमच्छ की तरह यह शहर भी विशालकाय मुंह वाए रहता है। वैसे यह मगरमच्छ दिखाई नहीं देता। उसे छुआ भी नहीं जा सकता और वह किसीकी पकड़ाई में भी नहीं आता। बाहर से देखो तो विराट-विराट रास्ते, विराट-विराट मकान, विराट-विराट फैक्टरी; लेकिन फिर भी यह मगरमच्छ जाने कैसे अपना खूंखार चेहरा लोगों की निगाहों से छुपाए रखता है। उसकी तरफ किसीकी निगाह ही नहीं जाती। उसका वह भयंकर रूप देख न पाने की वजह से ही, यह शहर नितान्त अपना लगता है। ऐसा लगता है, मानो यह शहर वेहद उदार है। इसीलिए तो वह सबको बुलाता है—आओ, आओ, यहां चले आओ! मैं तुम्हें सुख, शान्ति, ऐश्वर्य, आनन्द—सब कुछ दूंगा।

ये बातें गांव के भोले-भाले निवासियों को बहका-फुसलाकर शहर ले आती हैं। लेकिन कहां है वह सुख-शान्ति, ऐश्वर्य और आनन्द!

इस तरह शहर में गांव के लोगों की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जाती है। शहर की हवा और जहरीली हो आती है। इन्सान की आपा-धापी और दौड़-धूप में सिर्फ आकाश ही कलंकित होता है।

उन्हीं दिनों नरसिंहम बिली साहब से टकरा गया। बिली और जेमी मेमसाहब पहले दिन स्टेशन में प्लेटफार्म पर उतरे, नरसिंहम उनके सामने आ खड़ा हुआ।

"गुड मार्निंग, सर!"

"गुड मार्निंग···।"

"एनी सरविस, सर? कोई सेवा?—कोई होटल? मुझे नरसिंहम कहते हैं, सर!"

यानी उन्हें किसी मदद की जरूरत है? किसी होटल में ठहरने के इन्तजाम की जरूरत है?

साहब ठहरा हिप्पी आदमी! उसके साथ कोई लाव-लश्कर भी नहीं था। बिल्कुल मस्तमौला। अपने एक जोड़ी पैरों पर भरोसा करके उन लोगों ने समुन्दर पार किया था। गांव से चलकर हिन्दुस्तान आए थे। उनके लिए होटल-वोटल विलास के सामान थे। वे लोग अपने

मतलब का सौदा करके, दुबारा अपने देश लौट जाएंगे। अपना पेट भरने के लिए उन्हें किसी भी सहारे की जरूरत नहीं थी।

बिली ने कहा, "सुनो, एक मकान ठीक कर सकते हो? सिर्फ एक कमरा!"

"हां, सर, घर तो है! अच्छा, आपको कितने रुपये तक का घर चाहिए और किस मुहल्ले में?"

पसन्द-नापसन्द के मामले में साहब की कोई खास दिलचस्पी नहीं थी। उनके सामने चुनाव की भी कोई गुंजाइश नहीं थी। किसी भी मुहल्ले में, किसी भी किराए पर, महज एक कमरे की जरूरत थी। यहां तक कि साहब को फर्नीचर तक की भी जरूरत नहीं थी।

"लेकिन आप सोएंगे कहां, सर?"

"क्यों? जमीन पर। जैसे तुम इण्डियन लोग सोते हो'''।"

नरसिंहम ने ही उस दिन साहब के लिए कमरे का इन्तजाम किया था। अगर उस दिन नरसिंहम न होता तो मद्रास आकर भी साहब को आश्रय नहीं मिलता।

इसके बाद धीरे-धीरे नरसिंहम से घनिष्ठता होती गई। वैसे भी अपना साहब घनिष्ठता बढ़ाने के आर्ट में पूर्ण पारंगत है। इसके अलावा दुनिया में रुपया ही सबसे बड़ी कला नहीं है। रुपये की बदौलत इन्सान को कैसे वश में किया जाता है, यह जानना भी एक कला है। यह कला हर किसीको नहीं आती। जैसे रुपया कमाना आर्ट है, उसी तरह रुपये खिलाकर किसीसे अपना उल्लू सीधा करना, उससे भी बड़ी कला है।

बिली साहब अगर सचमुच कलाकार न होता तो इतने लोगों के होते हुए, अकेला वही इस काम के लिए हिन्दुस्तान क्यों आता?

नरसिहम बेहद गरीब, जरूरतमन्द और गंवई आदमी है, इतना जानने के लिए बिली साहब को बुद्धि खर्च करने की भी जरूरत नहीं पड़ी। साहब ने नरसिंहम के बारे में सब कुछ पता लगा लिया था। लेकिन उसके शहर आने के पीछे किसी छोकरी का किस्सा है, इसकी उसे खबर नहीं थी।

साहब ने पूछा भी था, "गांव में तुम्हारा और कौन-कौन है,

नरसिंहम ?"

नरसिंहम ने स्पष्ट जवाब दिया, "नहीं, सर, देश में मेरा कोई नहीं है। तीनों लोक में अपना कहने लायक कोई नहीं है···।"

"और व्याह ? तुमने व्याह भी नहीं किया ?"

"व्याह करने लायक मेरे पास रुपया कहां है, सर ? बीवी पालने से खर्चा भी तो लगता है। वह खर्चा कौन जुटाएगा ?"

साहब ने आश्वासन दिया, "अब तुम फिक्र न करो, नरसिंहम ! मैं तुम्हें रुपया दूंगा। मैं तुम्हें इतना-इतना रुपया दूंगा कि तुम एक नहीं दस-दस बीवियां पाल सकोगे।"

"दस बीवियां !"

नरसिंहम चकित रह गया। दस-दस बीवियां पालने के लिए तो बहुत सारे रुपयों की जरूरत होगी। नरसिंहम की तबियत हुई कि वह साहब की चरणधूलि लेकर माथे से लगा ले। लेकिन हिन्दू होकर आखिर म्लेच्छ की चरण-धूलि कैसे ले ? उसकी तो जाति ही भ्रष्ट हो जाएगी।

उन दिनों भी रम्भा का नाम कभी उसकी ज़ुबान पर नहीं आया। रम्भा उसकी निजी सम्पत्ति जो थी। उसके बारे में वह कभी किसीसे बात नहीं करता था। वह सिर्फ रुपये देखा करता था। भविष्य के सपने ! जाने वह दिन कब आएगा, जब वह रम्भा से व्याह करेगा। अपनी घर-गृहस्थी बसाकर निश्चिन्त होगा। वह सिर्फ सुखी होने के सपने में डूबा रहता था।

अक्सर वह स्टेशन के पथरीले प्लेटफार्म पर लेटे-लेटे स्वर्ग जाने के सपने देखा करता था और सोचा करता था, रम्भा भी उसकी प्रतीक्षा में आंखें बिछाए बैठी होगी।

नरसिंहम बीच-बीच में साहब से तकादा कर बैठता था, "क्या हुआ, सर ! मुझे रुपया कब देंगे ?"

"दूंगा। जल्दी ही दूंगा। इस बार लखनऊ से वापस आते ही तुम्हें रुपया देने का बन्दोबस्त करूंगा।"

"लखनऊ ?"

"हां, एक बहुत जरूरी काम से मुझे लखनऊ जाना होगा।"

"वहां आपको क्या काम है सर ? वह जगह तो मद्रास से बहुत दूर है ?—बिल्कुल उत्तरी भारत में···"

"उत्तरी भारत हो या दक्षिणी भारत। काम के सिलसिले में मुझे तमाम जगहों पर जाना पड़ता है, भाई ! काम हो तो जाऊंगा नहीं ?"

सच ही तो। काम के लिए ही तो साहब और मेमसाहब दोनों सात समुन्दर पार करके यहां आए थे।

उन दिनों मैं लखनऊ में माली का काम करता था। साहब के लिए बीच-बीच में मुझसे मुलाकात करते रहना भी जरूरी था और जैसे मुझसे मिलना जरूरी था, वैसे ही नरसिंहम से भी मिलते रहना जरूरी था। इसी तरह हिन्दुस्तान-भर में जाने कितने नरसिंहम, जाने कितने तापस साहब की खिदमत में बिछे पड़े थे।

हां, मुझे सचमुच नहीं मालूम था कि हम सभी लोग हिन्दुस्तान के दुश्मन हैं। इंडिया के शत्रु जैसे बाहर बिखरे हुए हैं, वैसे ही अन्दर भी बिखरे हुए हैं। मैं, यानी तापस, उन्हीं दुश्मनों में से एक हूं। मैं रुपया बनाता रहा और लखपति बन गया। अब मैं वी० आई० पी० हो गया हूं···तरह तरह के कामों के सिलसिले में मुझे सरकारी आमन्त्रण मिलने लगे हैं।···कोई भी व्यक्ति मुझसे मुलाकात करके धन्य-धन्य हो उठता है। मुमकिन है दो-एक सालों में मुझे पद्मभूषण भी मिल जाए, क्योंकि मैं इंडिया का जानी दुश्मन जो हूं। इतना तो खैर तुम्हें भी मालूम होगा कि इंडिया का दुश्मन हुए बिना, इंडिया में सम्मान नहीं मिलता। अतः मैं भी वही हूं।

खैर, हां, तो मैं नरसिंहम के बारे में बता रहा था।

लखनऊ से वापस लौटते ही नरसिंहम ने साहब के सामने फिर अपना सवाल दोहरा दिया, "क्यों साहब, मेरे लिए कुछ किया ?"

'हां, हां, करूंगा ! करूंगा ! इस बार उड़ीसा से वापस आते ही, तुम्हारे लिए कोई इन्तजाम करूंगा।"

उन दिनों साहब ने मद्रास को ही अपना मुख्य केन्द्र बना लिया था

क्योंकि अधिकांश मन्दिर मद्रास में ही थे। मद्रास को मुख्य केन्द्र बनाकर, वह सारी इण्डिया का चक्कर लगाता था। कभी बंगाल, कभी मद्रास, कभी उड़ीसा, कभी गुजरात! भारतवर्ष बेहतरीन मन्दिरों और कला-कृतियों का देश है और अमेरिका बनियों का देश है। भगवान ने वहां के लोगों को खास बुद्धि नहीं दी, लेकिन बेशुमार और बेहिसाब दौलत दे डाली। उन रुपयों के दम पर ये लोग समूची दुनिया की विद्या-बुद्धि खरीद लेना चाहते हैं—तुम लोग चाहे जहां के हो, तुम लोगों के पास चाहे जितनी विद्या-बुद्धि हो, सब हमें बेच दो। हम तुम्हें रुपया देंगे। अपने रुपयों से हम तुम्हारा सब कुछ खरीद लेंगे। तुम्हारी विद्या-बुद्धि, संस्कृति—सब कुछ खरीदकर, राजा बनकर तुम लोगों के सिर पर सवार हो जाएंगे। तब तुम लोग हमें सलाम ठोंकना। कहना—'सलाम, सर-कार! सलाम!'

लेकिन उस दिन नरसिंहम ने रुपयों की बात ही नहीं उठाई। उसने सिर्फ इतना ही कहा, "क्या हुआ सर? हमारे लिए कोई काम नहीं बताया? आपने तो मुझे काम देने का वादा किया था।"

साहब ने कहा, "दूंगा! दूंगा! काम भी दूंगा! इतना घबड़ा क्यों रहे हो? मैं रुपया तो तुम्हें दिए ही जा रहा हूं।"

नरसिंहम ने हिचकिचाते हुए कहा, "कोई काम भी नहीं किया और तब भी रुपये लेता जा रहा हूं; यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती, सर! बेहतर हो, आप मुझे किसी काम के बदले में रुपये दें—"

साहब ने पूछा, "तुम क्या कर सकते हो? तुम्हें कौन-सा काम आता है?"

"सर, मैं ठहरा गरीब आदमी! मैं सब काम कर सकता हूं।"

"फिर भी सुनूं तो सही, तुम कौन-सा काम जानते हो?"

"सर, मैं खाना बना सकता हूं, झाड़ू लगा सकता हूं, नारियल के पेड़ पर चढ़ सकता हूं, रिक्शा खींच सकता हूं और अगर मुझे मोटर चलाने की ट्रेनिंग मिल जाए तो वह भी चला सकता हूं। रुपये के लिए, मैं चोरी-डकैती भी कर सकता हूं।"

"चोरी-डकैती!" साहब की आंखें नरसिंहम के चेहरे पर जा

टिकी। उसने सवाल किया, "तुम चोरी-डकैती कर सकोगे ?"

"हां, सर ! करूंगा।"

"इससे पहले कभी चोरी-डकैती की है ?"

इस सवाल पर नरसिंहम का सारा उत्साह मानो बुझ गया। उसका चेहरा फूटे हुए गुब्बारे की तरह लटक गया, "नहीं, सर ! पहले तो कभी चोरी-डकैती नहीं की।"

"देखो, अगर तुम चोरी-डकैती कर सको तो मैं तुम्हें बहुत सारे रुपये दे सकता हूं।"

"चोरी-डकैती ?" नरसिंहम ने मानो अपने से ही सवाल किया।

थोड़ी देर सोच-विचार के बाद उसने जवाब दिया, "चलो, ठीक है ! अगर रुपये मिलेंगे तो चोरी-डकैती भी कर लूंगा। हां, अब बताइए कि क्या चुराना होगा ?"

"लेकिन तुम्हें एक वादा करना होगा। हमारे बारे में तुम कभी, किसीके सामने जुबान नहीं खोलोगे। तुम क्या काम करते हो, यह भी नहीं बताओगे।"

"नहीं, सर, नहीं बताऊंगा।"

"ठीक है ! तुम अपने भगवान का नाम लेकर कसम खाओ। क्यों, तुम भगवान को मानते हो न ?"

"हां, सर, मानता हूं। मैं भगवान वेंकटेश्वर का नाम लेकर कसम खाता हूं, मैं किसीसे भी नहीं कहूंगा।"

"और खुद कभी अमीरों जैसे कपड़े-लत्ते नहीं पहनोगे ?"

"नहीं। मैं वादा करता हूं, नहीं पहनूंगा।"

"हां; मुझे ही देखो न ? मैं भी तो आखिर अमीर आदमी हूं। हम लोगों के पास अटूट दौलत है, लेकिन हमें देखकर क्या कोई समझ सकता है कि हम लोग बड़े आदमी हैं ? देख लो, हम कैसे रहते हैं ? देख रहे हो न ? हम लोग फटी-पुरानी चप्पल और शर्ट पहनकर घूमते-फिरते हैं। आखिर क्यों ? इसलिए कि अच्छे कपड़े-लत्ते या जूते पहनने से ही लोगों के मन में ईर्ष्या जागेगी, समझे ! आया समझ में !"

लेकिन उस दिन नरसिंहम की समझ में कुछ नहीं आया। जिस

आदमी ने दुनिया में किसीको सच्चे मन से प्यार किया हो, उसके सोचने-समझने की सारी शक्ति जैसे खत्म हो जाती है। प्यार करने के बाद वह निरा बेवकूफ साबित होता है।

हैरत है, बन्धु! उन दिनों मुझे इन सब बातों की बिल्कुल जानकारी नहीं थी। उन दिनों तो मेरे सिर पर बस यही धुन सवार थी कि मुझे बड़ा आदमी बनना है। जब मैं सचमुच बड़ा आदमी बन गया, तब इस नरसिंहम पर भी नज़र पड़ी। उसी दिन मैंने पहली बार महसूस किया कि आखिर वह कौन-सी चीज़ है, जो रुपये-पैसे से भी बड़ी है।

लेकिन यह सब तो बहुत बाद की बातें हैं। जो घटनाएं बाद में घटीं, उन्हें क्रम से ही बताना बेहतर है। पहले मैं शुरू का किस्सा ही बयान करूं—जब हमारे जीवन में नरसिंहम ने पहली बार कदम रखा था।

दरअसल हमारे साहब ने आदमी पहचानने में गलती नहीं की थी। जिस आदमी के पीछे इतने-इतने करोड़पतियों का बल हो, भला वे लोग किसी आलतू-फालतू आदमी को इंडिया क्यों भेजने लगे? उन लोगों ने ही तो इस काम के लिए बिली साहब जैसे धुरन्धर घाघ आदमी को चुना था।

खैर, बिली साहब चाहे धुरन्धर घाघ हों या फालतू आदमी हो, मुझे तो बस, अपने अमीर बनने से मतलब था।

साहब ने नरसिंहम के पेट से सारी बातें निकलवा कर बेहद धीर-गम्भीर लहजे में कहा, "काम बिल्कुल आसान है।" इतना कहकर वह चुप हो गया।

नरसिंहम के लिए अब धीरज रखना मुश्किल हो गया। उसने कहा, "बताइए न, सर, क्या काम है? मैं किसीको नहीं बताऊंगा। आप जो कहेंगे, मैं वही करूंगा, सर!"

साहब ने अपनी आवाज़ को और धीमा करते हुए कहा, "काम है—मूर्ति चुराना।"

नरसिंहम ने विस्मित होकर पूछा, "मूर्ति चुराना! मतलब?"

साहब ने कहा, "मतलब बहुत आसान है। चाहे जैसे भी हो, तुम

यहां के बड़े-बड़े मन्दिरों से मूर्तियां चुरा-चुराकर मुझे दोगे, उसके बदले में हम तुम्हें रुपये देंगे।"

नरसिंहम डर गया। उसने कल्पना भी नहीं की थी कि रुपये के लिए उसे ऐसा पाप-कर्म करना होगा। उसने कहा, "लेकिन···यह तो बहुत बड़ा पाप है, सर!"

साहब ने कहा, "खैर, पाप तो है ही। लेकिन रुपये कमाना भी तो बहुत मुश्किल काम है। फिर भला तुम रुपये क्यों मांगते हो?" इतना कहकर साहब का चेहरा और गम्भीर हो गया।

नरसिंहम साहब का गुरु-गम्भीर चेहरा देखकर सहम गया। उसने कहा, "सर, आप मुझसे नाराज हो गए?"

साहब ने कहा, "क्यों? नाराज नहीं होऊंगा? तुम कहते हो, तुम्हें रुपये की सख्त जरूरत है। तुमने यह भी कहा था कि मैं जो काम कहूंगा, तुम करने को तैयार हो। लेकिन अब तुम्हें डर लगता है तो आज से रुपये मत मांगना। इतने दिनों मैंने जो रुपये तुम्हें दिए, मैं समझ लूंगा, फालतू खर्च हो गए। खैर, अब तुम जाओ, मैं कोई और आदमी देख लूंगा।"

नरसिंहम ने साहब की बेरुखी देखकर कहा, "नहीं, सर। मैं चोरी-डकैती भी कर लूंगा। बताइए, मुझे कौन-कौन-सी मूर्तियां चुरानी होंगी?"

इतनी देर बाद साहब दुबारा सहज हो आया, "सच कह रहे हो? तुम चोरी कर सकोगे न!"

"हां, सर! जरूर कर सकूंगा।"

"किसीसे कहोगे तो नहीं?"

"नहीं, सर!"

"देख लो, अगर किसीसे कुछ कहा तो नुकसान तुम्हारा ही होगा। मेरा कुछ भी नहीं बिगड़ेगा। यहां के तमाम बड़े-बड़े जबरजंग अफसर हमारे गिरोह में शामिल हैं, हमारे मुनाफे में उनका भी हिस्सा है। और पुलिस? पुलिस भी हमारे ही दल में शामिल है। सिर्फ तुम्हारी तरफ से ही आशंका होती है। अगर तुम किसीसे कुछ नहीं कहोगे, तो तुम्हारे

लिए भी डरने की कोई बात नहीं है।"

नरसिंहम ने सारी बातें सुनकर कहा, "ठीक है, सर! मैं तैयार हूं। बताइए क्या काम करना होगा?"

"तुम एक काम करो। परसों यानी मंगल को यहां मेरा एक आदमी आनेवाला है। बंगाली जेन्टलमैन! तुम्हारी ही उम्र का होगा। मैंने तुम्हारे बारे में उससे सारी बातें कर ली हैं। उसे तुम्हारा नाम भी बता दिया है।"

"उस बंगाली साहब का नाम क्या है?"

"उसका नाम है—तापस राय।"

नरसिंहम से मेरे परिचय की शुरुआत यहीं से हुई थी।

जिसकी शुरुआत ही ऐसी विचित्र थी, उसका अन्त भी ऐसा अविश्वसनीय होगा, उस दिन मैंने कल्पना भी नहीं की थी, बन्धु!

खैर, अब तक मैं तुम्हें अपने शुरू-शुरू के दिनों के किस्से सुना रहा था, लेकिन इसके बाद पानी सिर से बिल्कुल ऊपर चला गया। आओ, अब तुम्हें उसके बाद की घटनाएं सुनाता हूं—

···होटल के बाहर बहुत-से आलतू-फालतू लोगों की भीड़ जमा हो गई थी।

साहब ने नरसिंहम से पूछा, "अब तुम मुझसे साफ-साफ बताओ कि तुम क्या चाहते हो? तुम्हें रुपये चाहिए या रम्भा?"

नरसिंहम ने स्पष्ट स्वर में कहा, "मुझे रम्भा चाहिए, सर!"

"रम्भा को चाहते तो हो, लेकिन ब्याह के बाद उसे खिलाओगे क्या?"

"जैसे भी होगा मैं उसे खिलाऊंगा, सर! मैं स्टेशन पर कुलीगिरी कर लूंगा।"

नरसिंहम का जवाब सुनकर साहब रम्भा की तरफ मुड़ा, "अब तुम भी साफ-साफ बताओ कि तुम क्या चाहती हो? तुम्हें रुपये चाहिए या नरसिंहम?"

रम्भा ने स्पष्ट स्वर में कहा, "जिसके पास रुपये हों, मैं उसीको चाहती हूं, साहब!"

"लेकिन मान लो, अगर वह तुम्हें प्यार न करे? बाद में तुम्हें छोड़कर चला जाए?"

"अटूट दौलत हो तो प्यार-मुहब्बत बिना भी चलेगा, साहब!"

"तब ठीक है। तुम लोग अभी जाओ। मैं तुम लोगों को फिर बुलाऊंगा।"

साहब की बात सुनकर वे दोनों कमरे से बाहर निकल गए। मैं साहब के पास ही खड़ा था।

अब साहब मेरी तरफ मुड़ा, "बाबू, तुम खुद ही रम्भा से ब्याह कर लो न!"

"मैं!"

"हां, हां, तुम।"

लेकिन मैं रम्भा से ब्याह कैसे कर सकता था? उस वक्त मेरी त्रिशंकु की-सी स्थिति थी। साहब की बात अगर मैं नहीं मानता तो मेरे लिए आमदनी की राह बन्द हो जाएगी, और अगर मैं सचमुच रुपये कमाना चाहता हूं, तो रम्भा से ब्याह करने के अलावा मेरी और कोई गति नहीं थी।

लेकिन असली बात कुछ और थी। सवाल यह था कि रम्भा के गर्भ में महादेवन की जो सन्तान पल रही है, उसके पितृत्व की जिम्मेदारी कौन लेगा? उसका पिता कौन बनेगा?

जिन्दगी में जब आदर्शवाद को ही बड़ा मानता था, उन दिनों अगर साहब मुझसे सवाल करता तो मुमकिन है मैं यही राय देता कि गुनाहगार को सज़ा मिलनी ही चाहिए। पुण्य की जय और पाप की पराजय ही तो आदर्शवाद है।

लेकिन, बन्धु, उन दिनों तो मुझपर तुम लोगों की तरह कैरियर बनाने की धुन सवार थी। तुम लोगों की तरह मैंने भी संकल्प लिया था कि जब इस दुनिया में आ ही गया हूं तो चाहे जैसे भी हो, मुझे अमीर बनना ही होगा। मैंने मन ही मन दृढ़ निश्चय कर लिया कि मैं

इस दुनिया में हार जाने के लिए नहीं आया। मेरी जीत निश्चित है। मैं सबको लांघकर हर किसीके सिर पर सवार हो जाऊंगा।

साहब ने मुझसे दुबारा पूछा, "क्या हुआ? क्या सोच रहे हो? अरे, मामूली-सी बात है···! एक लड़की से ब्याह करना है; उसके लिए इतना आगा-पीछा सोचने को क्या है?"

"लेकिन रम्भा जिस बच्चे की मां बनेगी, उसका क्या होगा?"

"अब उसका क्या होना है? उसका बेटा तुम्हें ही 'फादर' कहेगा।"

साहब जितनी आसानी से कह गया, यह मामला उतना आसान नहीं था। दोस्त, किसी और का बच्चा खामख्वाह मुझे 'डैडी' कहकर बुलाए, भला मैं ही इसे क्यों बर्दाश्त करने लगा? रुपये के लिए क्या अपने मन को भी पत्थर बना लेना होगा?

मुझे चुप देखकर साहब ने पूछा, "तो तुम उससे ब्याह नहीं करोगे?"

उस वक्त भी मैं यह तय नहीं कर पाया था कि उसे क्या उत्तर दूं? मेरे माथे पर जैसे समूची पृथ्वी का बोझ आ पड़ा था। उस वक्त मैंने खुद अपने-आपसे ही सवाल किया कि मैं क्या करूं? यह सच है कि मुझे रुपयों की जरूरत है, लेकिन उसके लिए मुझे इतनी ऊंची कीमत चुकानी होगी? बाहरवालों के सामने शान से सिर उठाकर जीने के लिए मुझे अपने ही विवेक के आगे सिर झुका देना होगा?

उस वक्त किसीने मुझे सोचने-विचारने का समय भी नहीं दिया।

साहब मेरी तरफ हैरतअंगेज आंखों से देखता रहा।

"क्या हुआ? तुम इतने सोच में क्यों पड़ गए हो, बाबू? देख लो, हम अमेरिकन लोग, तुम भारतीयों की तरह इतना कुछ सोचते-विचारते नहीं; इसीलिए हम दुनिया में हर किसीसे इतना आगे बढ़ आए हैं। सभी हमारे अमेरिका में जाकर राहत की सांस लेते हैं। हमारी ही वजह से रूस तुम पर अपना जाल बिछाने में नाकामयाब हो गया है। भाई, यह बात तो तुम्हें भी मालूम होगी कि हमारे पास रूस से भी अधिक दौलत है। अरे भाई, दुनिया में रुपया ही तो असली टॉनिक है। दुनिया में इन्सान के जितने भी रोग-शोक हैं, उसका एकमात्र इलाज रुपया है। तुम उस छोकरी से ब्याह कर लो। इसमें क्या हर्ज

है। उसे ब्याह कर तुम भी रुपये कमा सकोगे और मैं भी चार पैसे का रोजगार कर सकूगा।"

"ब्याह के बाद अगर वह लड़की हमारे काम की न निकली, तो···?"

"अरे, वह जरूर काम आएगी! मैं इन्सान की शक्ल देखकर पहचान लेता हू।"

"अगर उसने किसी सन्तान को जन्म दिया, तब···?"

"उफ्, इस बात को लेकर तुम इतने परेशान क्यों हो? अरे, उसे खत्म करने में कितना वक्त लगेगा? उसे जड़ से मिटा देंगे, बस्!"

मैं चौंक उठा, "मार डालोगे?"

"क्यों, मारने में क्या हर्ज है? रुपयों के लिए तुम एक आदमी को भी खत्म नही कर सकते? तुम मछली-मुर्गी खाते हो, कबाब पकाते हो—उस वक्त क्या तुम्हें कोई मोह होता है? नहीं न! इसकी वजह यह है कि इन्हें खाकर तुम्हारी सेहत बनती है। सो जरूरत पड़ने पर एक दिन के बच्चे को खत्म करने में हर्ज भी क्या है? और वह तो तुम्हारे अपने खून का बच्चा भी नही है। उसके लिए तुम्हें इतना दर्द क्यों?"

मेरा भारतीय मन उन दिनो भी पूरी तरह मरा नही था, भाई! मैं साहब की बातों का कोई साफ-साफ जवाब नहीं दे पाया। हालांकि उस वक्त तक मैं बहुत सारे पाप कर चुका था, ढेरों झूठ भी बोल चुका था, बहुत-सी जगहों में धोखेबाजी भी कर चुका था। सच पूछो तो मैं पाप को पाप समझना भी भूल चुका था। मैंने सोच लिया था पाप-पुण्य फालतू बातें हैं। यह सब अपना धन्धा चलाने के लिए ठाकुर-पुरोहितों का बिछाया हुआ जाल है। मैंने यह मान लिया था कि दुनिया में पाप-पुण्य कुछ भी नही है। यह सब महज फरेब है; वर्ना आंखों के सामने ही जाने कितने लोग अन्याय और पाप करते हैं, लेकिन वे लोग तो खासे आराम में हैं। उनका तो कभी कोई बुरा नहीं हुआ। जाने कितने मिनिस्टर चोरी करते हैं, घूस खाते हैं, लोगों को चमका देते हैं—लेकिन इसके बावजूद वे सभाओं में जाकर फूलों की मालाएं पहनते

इस दुनिया में हार जाने के लिए नहीं आया। मेरी जीत निश्चित है। मैं सबको लांघकर हर किसीके सिर पर सवार हो जाऊंगा।

साहब ने मुझसे दुबारा पूछा, "क्या हुआ ? क्या सोच रहे हो ? अरे, मामूली-सी बात है···! एक लड़की से ब्याह करना है; उसके लिए इतना आगा-पीछा सोचने को क्या है ?"

"लेकिन रम्भा जिस बच्चे की मां बनेगी, उसका क्या होगा ?"

"अब उसका क्या होना है ? उसका बेटा तुम्हें ही 'फादर' कहेगा।"

साहब जितनी आसानी से कह गया, यह मामला उतना आसान नहीं था। दोस्त, किसी और का बच्चा खामख्वाह मुझे 'डैडी' कहकर बुलाए, भला मैं ही इसे क्यों बर्दाश्त करने लगा ? रुपये के लिए क्या अपने मन को भी पत्थर बना लेना होगा ?

मुझे चुप देखकर साहब ने पूछा, "तो तुम उससे ब्याह नहीं करोगे ?"

उस वक्त भी मैं यह तय नहीं कर पाया था कि उसे क्या उत्तर दूं ? मेरे माथे पर जैसे समूची पृथ्वी का बोझ आ पड़ा था। उस वक्त मैंने खुद अपने-आपसे ही सवाल किया कि मैं क्या करूं ? यह सच है कि मुझे रुपयों की जरूरत है, लेकिन उसके लिए मुझे इतनी ऊंची कीमत चुकानी होगी ? बाहरवालों के सामने शान से सिर उठाकर जीने के लिए मुझे अपने ही विवेक के आगे सिर झुका देना होगा ?

उस वक्त किसीने मुझे सोचने-विचारने का समय भी नहीं दिया।

साहब मेरी तरफ हैरतअंगेज आंखों से देखता रहा।

"क्या हुआ ? तुम इतने सोच में क्यों पड़ गए हो, बाबू ? देख लो, हम अमेरिकन लोग, तुम भारतीयों की तरह इतना कुछ सोचते-विचारते नहीं; इसीलिए हम दुनिया में हर किसीसे इतना आगे बढ़ आए हैं। सभी हमारे अमेरिका में जाकर राहत की सांस लेते हैं। हमारी ही वजह से रूस तुम पर अपना जाल बिछाने में नाकामयाब हो गया है। भाई, यह बात तो तुम्हें भी मालूम होगी कि हमारे पास रूस से भी अधिक दौलत है। अरे भाई, दुनिया में रुपया ही तो असली टॉनिक है। दुनिया में इन्सान के जितने भी रोग-शोक हैं, उसका एकमात्र इलाज़ रुपया है। तुम उस छोकरी से ब्याह कर लो। इसमें क्या हर्ज़

है। उसे ब्याह कर तुम भी रुपये कमा सकोगे और मैं भी चार पैसे का रोजगार कर सकूंगा।"

"ब्याह के बाद अगर वह लड़की हमारे काम की न निकली, तो···?"

"अरे, वह जरूर काम आएगी! मैं इन्सान की शक्ल देखकर पहचान लेता हूं।"

"अगर उसने किसी सन्तान को जन्म दिया, तब···?"

"उफ्, इस बात को लेकर तुम इतने परेशान क्यों हो? अरे, उसे खत्म करने में कितना वक्त लगेगा? उसे जड़ से मिटा देंगे, बस्!"

मैं चौंक उठा, "मार डालोगे?"

"क्यों, मारने में क्या हर्ज है? रुपयों के लिए तुम एक आदमी को भी खत्म नहीं कर सकते? तुम मछली-मुर्गी खाते हो, कबाब चबाते हो—उस वक्त क्या तुम्हें कोई मोह होता है? नहीं न! इसकी वजह यह है कि इन्हें खाकर तुम्हारी सेहत बनती है। सो जरूरत पड़ने पर एक दिन के बच्चे को खत्म करने में हर्ज भी क्या है? और वह तो तुम्हारे अपने खून का बच्चा भी नहीं है। उसके लिए तुम्हें इतना दर्द क्यों?"

मेरा भारतीय मन उन दिनों भी पूरी तरह मरा नहीं था, भाई! मैं साहब की बातों का कोई साफ-साफ जवाब नहीं दे पाया। हालांकि उस वक्त तक मैं बहुत सारे पाप कर चुका था, ढेरों झूठ भी बोल चुका था, बहुत-सी जगहों में धोखेबाजी भी कर चुका था। सच पूछो तो मैं पाप को पाप समझना भी भूल चुका था। मैंने सोच लिया था पाप-पुण्य फालतू बातें हैं। यह सब अपना धन्धा चलाने के लिए ठाकुर-पुरोहितों का बिछाया हुआ जाल है। मैंने यह मान लिया था कि दुनिया में पाप-पुण्य कुछ भी नहीं है। यह सब महज फरेब है; वर्ना आंखों के सामने ही जाने कितने लोग अन्याय और पाप करते हैं, लेकिन वे लोग तो खासे आराम से हैं। उनका तो कभी कोई बुरा नहीं हुआ। जाने कितने मिनिस्टर चोरी करते हैं, घूस खाते हैं, लोगों को चमका देते हैं—लेकिन इसके बावजूद वे सभाओं में जाकर फूलों की मालाएं पहनते

, उनके व्याख्यानों पर तालियां पिटती हैं। इसके विपरीत जिन
पुण्य किए हैं, हर दिन हरिद्वार में गंगा नहाकर गंगा-स्तोत्र का पाठ
करते हैं, भगवान के नाम पर दान-पुण्य करते हुए मन्दिर-मन्दिर में
पूजा-पाठ करते हैं, वे लोग आखिर कहां सुखी हैं ?

यानी साहब की बात ही सच है ?

साहब जैसे हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ गया। उसने कहा, "क्यों ?
कुछ बोलते क्यों नहीं ? मेरी बात का जवाब दो।"

"लेकिन मैं जो इतना जोखिम उठाऊंगा, उसके बदले में मुझे क्या
मिलेगा ?"

"तुम्हें रुपया मिलेगा।"

"कितना ?"

"हजारों-हजार रुपए ! तुम जैसा काम दिखाओगे वैसे रुपये
मिलेंगे।"

मेरे मन में जाने कैसा-कैसा सन्देह होने लगा।

मैंने पूछा, "मान लो, अगर वैसा काम मैं न दिखा पाया ?"

"क्यों ? क्यों नहीं दिखा सकोगे काम ? अपनी बीवी से समूचा
काम वसूल लेना। तुम्हारी बीवी यह काम ज़रूर कर पाएगी।"

"यह तुमने कैसे जाना ?"

"तुमसे पहले ही कह चुका हूं—मैं आदमी पहचानता हूं। मर्द औ
औरत—दोनों को पहचानता हूं। तुम बंगालियों में एक कहावत है
कि मूंछें देखकर ही शिकारी बिल्ली पहचान ली जाती है। हम लोग
वही हैं। मैं हर किसीको पहली नजर में ही पहचान लेता हूं। दरअ
तुम्हें भी मैंने ही पहचाना था..."

"तुमने नहीं, साहब, मूलचन्द ने। मूलचन्द ने ही मुझे ठीक पह
था..."

साहब ने हंसकर कहा, "नहीं, मूलचन्द को मैंने ही भेजा था,
परीक्षा लेने के लिए। मूलचन्द मेरा ही आदमी था।"

मैं मानो आकाश से गिरा, "अच्छा !"

साहब ने ज़ोर का ठहाका लगाते हुए कहा, "हां, जो ल

बुरे स्वभाव के होते हैं, उनसे कोई बुरा काम करा पाना मुश्किल है। इसीलिए किसीको एजेन्ट बनाने से पहले हम उसे ठोंक-बजाकर देख लेते हैं कि वह भलामानस है या बुरा आदमी। अगर वह भलामानस निकला तो उसे अपने दल में खींच लाने की कोशिश करते हैं। इसीलिए अपना धन्धा चलाने के लिए हमें हमेशा ईमानदार आदमियों की तलाश रहती है। दुनिया में जितने भी बेईमानी के काम हैं, सब ईमानदार लोगों के हाथों ही कराए जाते हैं। ये लोग ही हमारे फर्स्ट टारगेट यानी पहले शिकार होते हैं…"

अब मैं क्या कहता? मैं चुपचाप उनकी बातें सुनता रहा।

साहब ने अपनी बात समाप्त करते हुए कहा, "खैर, छोड़ो। [illegible] सारा वक्त यूं ही बर्बाद हो गया। अब मैं असली काम [illegible] चाहता हूं। तुम चटपट उससे ब्याह कर डालो…"

ठीक है, साहब! तुम जो कहोगे, वही करूंगा।"

तापस अपनी कहानी कहते-कहते चुप हो गया।

मैंने ही उसे कुरेदते हुए पूछा, "उसके बाद क्या हुआ?"

उसके बाद? उसके बाद मैंने रम्भा से ब्याह कर लिया। [illegible] वैसे ब्याह के बारे में पहले कभी मैंने सोचा भी नहीं था। [illegible] रुपया-पैसा कमाकर गृहस्थी बसाऊंगा; बेटे-बेटियों [illegible]— इसको मैं भला कल्पना भी कैसे कर सकता था?

मैं भाग्यवादी कभी नहीं था। हां, [illegible] भरोसा किया है। काम के भरोसे ही [illegible] है। वैसे काम भी सैकड़ों तरह के होते हैं—[illegible] बचपन में सिखाया गया था अपने [illegible] में बड़ा बनता है। लेकिन जब [illegible] मैंने पाप की राह ही पकड़ ली। [illegible] लेकर इतना इतना परेशान होने की [illegible] फैसला उसके परिणाम पर निर्भर करता है। [illegible]

मैं भी बड़ा आदमी बन जाऊंगा, तो खूब दान-पुण्य किया करूंगा। गरीबों में जी खोलकर रुपये बांटूंगा। पहले गरीबों का खून चूस-चूस कर बड़ा आदमी बनूंगा। लेकिन जब सचमुच दौलतमन्द बन जाऊंगा, तो चुटकी भर रुपये छितराकर गरीबों के लिए फ्री-स्कूल, फ्री-अस्पताल खुलवा दूंगा। बस, इसी बहाने मेरे सातों खून माफ हो जाएंगे।

लेकिन बन्धु, हर किसी मामले में तुम लोग ही मेरी राह का रोड़ा बन गए। तुम लोगों ने ही मुझे इतना भाग्यवादी बना दिया था कि...

तुम लोग विश्वास नहीं करोगे, लेकिन यह सच है कि लाखों-करोड़ों रुपये कमाने के बावजूद आज भी मैं भाग्य पर विश्वास करता हूं।

"क्यों ?"

वही तो बताने जा रहा हूं। जाने तुम लोग अब भी भाग्य पर विश्वास करते हो या नहीं, लेकिन आज जहां मेरी किस्मत मुझे खींच लाई है, उसका हाल सुनोगे तो, मुमकिन है, तुम भी किस्मत को मानने लगो।"

"तूने क्या सचमुच उस लड़की से ब्याह कर लिया ?"

"हां ! मैंने सचमुच ब्याह कर लिया, वर्ना बीस हज़ार रुपये कैसे हाथ आते ? एक मामूली-सी लड़की से ब्याह करने के एवज़ में अगर बीस हज़ार रुपये मिलते हों तो भला मैं मना भी क्यों करता ? कहा न, उन दिनों मुझपर रुपये का लोभ सवार था।"

"लेकिन वह बच्चा ? रम्भा तो किसी बेटे या बेटी की मां बनने-वाली थी न ?"

हां, उसी बात पर तो आ रहा हूं। वही बताने के लिए तो तुझे अपने साथ ले आया हूं। जिन्दगी में इन्सान अगर कहीं से कुछ अधिक पा लेता है तो हरजाने में और किसी जगह उसे उतना ही अधिक चुकाना भी पड़ता है। तैमूरलंग तो काफी मशहूर व्यक्तित्व था न ? इतिहास में उसकी वीरता की कहानियां रची गई हैं। लेकिन उसे भी अपनी ख्याति के मूल्य-स्वरूप अपनी टांग खोनी पड़ी थी। दुनिया में जहां कहीं भी पाने की घटनाएं मिलती हैं अगर पता लगाने जाओ तो उनकी तुलना में खोने के हादसे निश्चित रूप से अधिक होंगे। अगर

कोई व्यक्ति लाखों-करोड़ों रुपयों का मालिक है, तो या तो उसका इकलौता बेटा पागल होगा या इकलौती बेटी विधवा होगी यानी जरूरत से अधिक चाहने पर, बाजार-दर से अधिक कीमत भी चुकानी होगी। दुनिया के शेयर-बाजार का यही शाश्वत नियम है। एक बार बंगलौर में मैंने एक अद्भुत खूबसूरत आदमी को देखा था। कोई मर्द इतना खूबसूरत हो सकता है, इसकी मैंने कल्पना नहीं की थी। मैंने उसका परिचय जानना चाहा। वह आदमी विश्वविद्यालय की चार-चार डिग्रियों का मालिक था। किसी फार्म में बिजनेस-एक्जिक्यूटिव था। उसकी तनखा भी मोटे तौर पर करीब पांच हजार रुपये जरूर होगी। मैंने उसके बारे में और अधिक जानना चाहा। इतने अपूर्व रूप-गुण के लिए क्या उसे कुछ भी कीमत नहीं चुकानी पड़ी? क्या इसके लिए उसे कोई मोटा हरजाना नहीं देना पड़ा?

मेरी खोज का बिल्कुल उल्टा परिणाम निकला। जो भी मिला, उसके रूप-गुण की प्रशंसा में पंचमुख था। इसके अलावा हर किसीकी जुबान पर उसकी मोटी तनखा की चर्चा भी थी। मेरा आश्चर्य उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

ऐसा तो नामुमकिन है। ऐसी घटना तो नितान्त अस्वाभाविक है। आमतौर से रूप-गुण और रुपयों में तो पंख लगे होते हैं; जो पंछी की तरह उड़-उड़कर चारों तरफ आत्मप्रचार करते हैं और अन्य लोगों के सामने अपने सौभाग्य का बखान करते नहीं अघाते।

लेकिन हरजाना!

वह बिल्कुल गुप्त रहता है। अगर हम ऊंची कीमत पर हीरे का हार भी खरीदते हैं, तो मन होता है लाउड-स्पीकर पर चीख-चीखकर दुनियावालों को उसकी कीमत बता आएं। अपने ऐश्वर्य-प्रदर्शन से हम लोगों पर अपना रौब तो जमा ही सकते हैं।

लेकिन इस हरजाने से मुक्त होने का कोई उपाय नहीं है। हरजाने की बात बेहद शर्मनाक होती है न, अतः उसे दुनिया की नजरों से छुपा लेना ही बेहतर है।

आखिरकार मेरे सब्र का बांध टूट गया।

कन चाहे जैसी भी हो, मुझे उस खूबसूरत आदमी के
म का पता लगाना ही होगा।
ने अपना सारा काम-काज छोड़कर इसी बात का पता लगाने में
हो गया।

"फिर क्या हुआ ? कुछ पता लगा ?"

हां, लगा ! उसका पता लगा तो सही, लेकिन चिंगलीपट जाकर,
हां जाकर पता लगा कि उसने जो कुछ कहा था और उसके बारे में
जो कुछ पता लगाया था, सब अक्षरशः सत्य था। उसने सिर्फ एक ही
बात नहीं बताई थी; जो मैंने चिंगलीपट पहुंचकर जानी। मुझे पता
चला कि वह किसी राजा की रखैल का लड़का है।

खैर, छोड़ो ये बात !

अन्त की बात अन्त में ही कहना बेहतर है। कहानी के आखिर का
हिस्सा अगर पहले बता दूं तो जिन्दगी का बहुत सारा सुख यूं ही
निःशेष हो जाए। मान लो, मिल्टन को अगर पहले से ही ज्ञात
जाता कि वे अन्धे हो जाएंगे, तो वह इतनी लिखाई-पढ़ाई करते
शाहजहां को अगर पहले से ही खबर हो जाती कि औरंगजेब उ
बुढ़ापे में वन्दी बनाएगा, तो क्या वह दिल्ली के सिंहासन पर बैठते
बंकिम चाटुर्ज्या का नवकुमार अगर पहले ही जान लेता कि कपालकुंडला
से व्याह करके इतना दुर्भोग होगा, तो भला वह व्याह करता ?

इसीलिए बन्धु, कभी-कभी मैं भी सोचता हूं कि उस दिन रुपये के
लोभ में आकर मैंने रम्भा से व्याह ही क्यों किया ? मैंने भी दुनिया
रुपये को ही सबसे बड़ा क्यों मान लिया ?

अब तक मैं बेहद उत्कंठा से तापस की कहानी सुन रहा था। मैंने
सवाल किया, "फिर ? उसके बाद ?"

"दरअसल यह शादी ही मेरी जिन्दगी की सबसे बड़ी भू
गई। आखिरकार वह रम्भा ही मेरे चरम सर्वनाश का कारण

"सो कैसे ? रम्भा ने क्या काम करने से इन्कार कर दिय

नहीं ! काम तो खैर किया । आज जो मैं इतने-इतने रुपयों का मालिक हूं, एक्सपोर्ट का इतना लम्बा-चौड़ा कारोबार चलाता हूं, यह सब रम्भा की ही वजह से सम्भव हुआ। हमारे ब्याह के बाद पूरे साउथ इण्डिया में घूम-घूमकर उसने हमारे लिए जाने कितने-कितने करोड़ों की मूर्तियां चुराईं, उसका कोई ठिकाना नहीं है। इसके लिए उसके प्रति जितना मैं कृतज्ञ हूं, उतना ही हमारा साहब भी।

बात यह है, मेरे दोस्त, कि रम्भा की सारी लाज-शर्म मैंने ही हर ली थी। उसके बाद उसके मन में भी कोई दुश्चिन्ता नहीं रही। उसने ज़िन्दगी में पहली बार सुन्दर-सुन्दर साड़ी-कपड़ों और गहनों का मुंह देखा था। जिन चीज़ों की उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी, वही सब उसे अचानक मिल गया था। उसका भी अपना मकान बन गया, गाड़ी आई। अब वह भी परम सुखी थी। लेकिन मेरे मन में जाने क्यों अजीब-सी दुर्भावना समाई हुई थी।

रम्भा ने अपने मां बनने के बारे में मुझसे कभी कुछ नहीं कहा।

ब्याह के तीन महीने बाद, एक रात मैंने ही पूछा, "अच्छा, तुम मां बननेवाली थी न ? इस बारे में तो तुमने कभी कुछ नहीं बताया !"

रम्भा खिलखिलाकर हंस पड़ी।

"अरे, तुम हंस क्यों रही हो ?"

रम्भा ने मेरे सीने में मुंह गड़ाकर कहा, "वे सब झूठ-झूठ बातें थीं।"

मेरे माथे पर मानो आकाश टूट पड़ा। मैंने उसका चेहरा उठाते हुए पूछा, "झूठ—झूठ बातें थीं—मतलब ?"

वह सब तो नरसिंहम की सिखाई-पढ़ाई बातें थीं। वही मुझे सिखाकर लाया था कि मैं झूठ-झूठ कह दूं कि मैं मां बननेवाली हूं, ताकि तुम लोगों से अधिक रुपये वसूल करके हम दोनों आपस में बांट लें।" यह कहकर वह दुबारा खिलखिला उठी।

रम्भा की हंसी सुनकर मेरे सारे बदन में झुरझुरी फैल गई। मेरी तबियत हुई कि मैं उसी दम उसका खून कर डालूं। जाने कितने दिनों की, जाने कितनी आकांक्षाएं उसने मटियामेट कर दी। उसने मुझे यूं

लिया ?

लेकिन असल बात तो यह थी कि मुझसे कुछ भी नहीं हो सका। लोग उसी दिन तंजौर के मन्दिर से अष्टधातु के नटराज की एक त उड़ा लाए थे। उसकी कीमत लगभग तीस लाख रुपये थी। इसीलिए स वक्त भी मैं उसके प्रति कृतज्ञता महसूस कर रहा था। हां, मैं इतना रूर बता सकता हूं कि रम्भा की वजह से साहब को तो खैर करोड़ों रुपयों का फायदा हुआ, साथ ही मुझे भी कम से कम कुछेक लाख रुपयों का मुनाफा तो हुआ ही।

उन दिनों समाज में भी मेरी प्रचुर प्रतिष्ठा होने लगी थी। इस तरह साहब और मेमसाहब हिन्दुस्तान से करोड़ों रुपयों की बेशकीमती चीजें उड़ाकर अपने देश भाग खड़े हुए। जाते वक्त वे लोग मुझे भी बहुत सारा धन-दौलत दे गए थे। मैं भी लखपति आदमी बन गया। समाज का एक गण्यमान्य व्यक्ति ! इसी बीच मैंने दिल्ली जाकर अपने लिए इम्पोर्ट लाइसेन्स भी जुगाड़ लिया और यहां भी आफिस खोल लिया ! बस् ! अब मुझे कौन पकड़ सकता था ?

उन दिनों एकमात्र रम्भा ही मेरे लिए शर्मनाक प्रसंग थी। मैं खुद उस संभ्रान्त समाज में शान से आता-जाता था लेकिन रम्भा के साथ वहां जाते हुए मुझे शर्म आती थी। लोगों को कहीं ये शक न हो जाए कि मुझ जैसे संभ्रान्त व्यक्ति ने ऐसी औरत से ब्याह कैसे कर लिया ? इसीलिए मैं उसे अपने साथ लेकर कहीं भी नहीं जाता था।

एक रात रम्भा ने ही सूचना दी कि वह मां बननेवाली है।

चूंकि एक बार पहले भी वह यह बात कहकर मुझे धोखा दे चुकी थी, अतः मैं दुबारा उसके चकमे में नहीं आना चाहता था।

मैंने पूछ ही लिया, "क्यों, पिछली बार की तरह !"

"नहीं जी, इस बार तो बिल्कुल सच्ची-सच्ची...?"

उस समय रम्भा से मैंने बात नहीं बढ़ाई। मौका देखकर मैं दुबारा साउथ इण्डिया घुमाने ले गया।

वह कोई मामूली-सा गांव था। तन्जौर के भीतर। एक छोटा गांव। वहां बाहरी लोगों का आना-जाना बहुत कम था।

रम्भा ने पूछा था, "यह मुझे कहां ले आए ?"

"यहां का डाक्टर काफी एक्सपर्ट है ! डर की कोई बात नहीं है...."

मैंने उसे एक छोटे-से अस्पताल में भर्ती कर दिया। वहां के डाक्टर को मैंने अकेले में ले जाकर मोटा रुपया देने का लोभ दिलाया। वह डाक्टर बुरी तरह सहम गया। लेकिन मैंने गौर किया, वह बेहद गरीब था। उसकी डाक्टरी का भी उतना रौब-दाब नहीं था।

डाक्टर ने मेरी बात सुनकर कहा, "नहीं, यह असम्भव है।"

मैंने अपनी मुसीबत बताकर डाक्टर को समझाने की कोशिश की। उससे अपने सर्वनाश की बात भी समझाकर कही !

लेकिन डाक्टर अपनी बात पर अटल रहा, "नहीं ! ऐसा सम्भव नहीं है, सर !"

"अच्छा, अगर मैं आपको पूरे एक हजार रुपये दूं, तो ?"

"नहीं ! नामुमकिन ! मैं गैर-कानूनी काम नहीं कर सकता।"

"अगर पांच हजार रुपये दूं ?"

"नहीं ! कृपया मुझे रुपये का लोभ न दिलाएं।"

डाक्टर अपनी बात पर उसी तरह अचल-अटल रहा।

"अगर तीन लाख रुपये दूं ?"

मैंने गौर किया, अब डाक्टर के चेहरे का रंग जैसे बदलता जा रहा था। मैं समझ गया, रुपये की राशि सुनकर शायद वह राजी हो गया है। रुपयों के जोर पर आखिर किसे वश में नहीं किया जा सकता ? और मैं तो खैर रुपये बहाने को तैयार बैठा था।

मैंने कहा, "चाहे जितने रुपये लगें, रम्भा के बच्चे को नष्ट करना ही होगा।"

डाक्टर ने कहा, "लेकिन आप काफी देर से आए, सर ! थोड़े दिन पहले आ जाते तो डर की कोई बात नहीं थी ! अब तो मां की जान पर खतरा आ सकता है।"

"मरने दो उसे ! मुझे कोई एतराज नहीं है !"

डाक्टर मेरा आशय फौरन समझ गया। रम्भा को वहां भर्ती करके मैं बम्बई चला आया। वहां से बीच-बीच में डाक्टर को रुपये भेज

देता था और फोन पर ही सारी वस्तुस्थिति की खोज-खबर ले लेता था।

बहुत दिनों बाद अचानक डाक्टर ने ट्रंक-काल पर खबर दी, "फौरन चले आइए। मरीज चल बसा।"

खबर मिलते ही मैं वहां के लिए रवाना हो गया। वहां पहुंचकर मैंने देखा, डाक्टर की बात सच थी। रम्भा मर चुकी थी। यूं रम्भा मरी नहीं थी, कहना चाहिए, उसे मार डाला गया था। लेकिन उसकी सन्तान जिन्दा थी। रम्भा की सन्तान, यानी मेरी सन्तान। मुझे उस सन्तान की शक्ल से भी नफरत हो चुकी थी, बन्धु! जिसे मैंने शुरू से ही नापसन्द किया, लेकिन अपनी ही गरज से उसे बीवी स्वीकार करना पड़ा, उसकी मौत के बाद मुझे उसकी सन्तान की शक्ल से भी विरक्ति हो चुकी थी।

मैंने डाक्टर से कहा, "अब जबकि वह बच ही गया है, तो उसे मारने की कोई जरूरत नहीं है। उसे आप किसी आश्रम में भेजने का इन्तजाम कर दीजिए। इसके लिए जो खर्चा लगेगा मैं दे दूंगा। लेकिन हांऽऽ—मेरा नाम-धाम कोई न जान पाए···"

उस दिन मैं बस, इतना ही कहकर चला आया था। उसके बाद मैंने उस लड़के की कभी खोज-खबर नहीं ली। सिर्फ हर महीने रुपये भेज देता था।

लेकिन बन्धु, अब मेरी भी उम्र ढलने को आई। ढलती उम्र में आदमी की नजर भविष्य से अधिक अतीत की तरफ जा ठहरती है! मैं भी जब अपने अतीत की ओर देखता हूं तो सिर्फ रम्भा याद आती है। उसने मरकर भी मेरा पीछा नहीं छोड़ा, दोस्त! इस बारे में मुझे कोई सन्देह नहीं रहा कि अब मैं चाहे जितने दिन भी जिन्दा रहूं, वह मुझे जलाया करेगी।···

"और तेरा वह बेटा?"

"वह भी अब बड़ा हो गया था। मैं उसे तन्जौर से नागपुर ले आया और अपने ही दफ्तर में नौकरी दे दी। लेकिन उसे यह नहीं मालूम कि मैं ही उसका पिता हूं। उसका ख्याल है, वह महाराष्ट्र का आदमी

है। आश्रम के लोगों ने उसका नाम भी मराठियों जैसा ही रख दिया था।

"उस लड़के की जन्मकथा उस डाक्टर के अलावा और किसीको भी नहीं मालूम। उसे तो सिर्फ इतना भर मालूम है कि वह मराठी है और बचपन में ही उसके मा-बाप की मृत्यु हो चुकी है।"

मैं चौंक उठा। मैंने उससे छूटते ही पूछा, "अच्छा, बताओ तो उसका नाम क्या है?"

"पटवर्धन!—उसे सब पटवर्धन के नाम से ही जानते-पहचानते हैं। अगर तू कभी नागपुर जाए तो उसे देखना! उजला, दूधिया रंग! घुंघराले बाल! उसकी मा भी ठीक उसीकी अविकल तस्वीर थी।"

पटवर्धन! मुझे नागपुर के उस नौजवान लड़के की याद हो आई। उसी पटवर्धन ने ही मुझसे सवाल किया था—'अच्छा, आप तो रायसाहब के पुराने दोस्त हैं न? क्या आप बता सकते हैं कि रायसाहब साउथ इंडिया के उस मन्दिर में हर साल रुपये क्यों भेजते हैं? यूं तो वे भगवान-वगवान का नाम तक सुनकर आगबबूला हो उठते हैं।'

"उसके बाद क्या हुआ?" मैंने तापस से पूछा।

उसके बाद और क्या? अब जो मैं हूं, वह तो तू देख ही रहा है! अब मेरे पास बेशुमार दौलत और इज्जत है। यहां किसीको भी नहीं मालूम कि मैं खूनी मर्डरर, चोर या डकैत हूं। दरअसल दोस्त, जितना नुकसान मैंने इंडिया का किया है, उससे कहीं अधिक खुद अपना किया है। शायद तुझे लगेगा कि भला यह कौन-सा बड़ा नुकसान है! तेरी राय में इस हादसे को मैं दिल से भुला दूं, बस्, सारा किस्सा ही खतम! हम हिन्दू लोग महादेव को भोलानाथ भी कहते हैं न! उन्हींकी तरह शराब या भांग पीकर बम भोलेनाथ बने रहो, बस्! मेरा भी यही ख्याल था, दोस्त! इसीलिए मैंने भी शराब-भांग वगैरह का सेवन शुरू कर दिया! साहब ने ही मुझे इन सब नशाओं की लत लगा दी थी। चरस, गांजा, चंडू, हशीश—मैं सब कुछ पीने लगा। लेकिन रम्भा को भुला पाना तो दूर की बात थी, जैसे-जैसे मेरा नशा बढ़ता गया, रम्भा की याद उतनी ही तीखी होती गई। सुना है, महादेव ने सती-

वियोग में समूची दुनिया को तहस-नहस कर डाला था। इसीलि
भोलानाथ का एक नाम नटराज भी है। उसी नटराज की जाने कितन
कितनी मूर्तियां मैंने चुराई हैं। लेकिन कभी मैं भी अपनी पार्वती
शोक में नटराज बन जाऊंगा, यह मैंने नहीं सोचा था। हां, अब
नटराज की तरह ही ताण्डव-मुद्रा में नाच रहा हूं, दोस्त! आज
हिन्दुस्तान में हूं, मुमकिन है कल ही जापान के लिए रवाना हो जाऊ
वहां से सीधे यू० के० पहुंच जाऊं और उसके फौरन बाद ही यू० एस
ए०। जो लोग मेरे यहां काम करते हैं, वे सोचते हैं मैं रुपयों के लि
समूची दुनिया छान रहा हूं। लेकिन बन्धु, मैं रुपयों के लिए नहीं, अ
ही पाप और अभिशापों की वजह से दर-दर की खाक छान रहा हू
दरअसल यह मेरे राहु का चक्कर है। रम्भा मरने से पहले शायद म
ही मन मुझे अभिशाप दे गई थी—'तुम अपनी ही सन्तान को स्वीक
नहीं कर सके, उसी गुनाह की वजह से तुम्हें सारी जिन्दगी दर-दर
खाक छानते हुए दम तोड़ना होगा···।'

हां, दोस्त, अब मुझे उसकी सारी बातें याद आती हैं। वह कह
थी, "अच्छा, मैंने ऐसा कौन-सा कसूर किया है जो तुम मुझे अप
बीवी तक मानने को राज़ी नहीं हो ?"

जवाब में मैं पूछता था, "लेकिन तुमने मुझसे झूठ क्यों बोला था ?

रम्भा ने स्वयं स्वीकार किया था कि उसने रुपयों के लिए ही मुझ
झूठ बोला था।

"खैर, जिन रुपयों की खातिर तुमने मुझसे झूठ बोला था, मैंने तु
उन्हीं रुपयों से भर दिया है। अब तुम मेरी बीवी बनने को क्यों आन
हो···?"

खैर, ये सब तो महज़ बहस की बातें थीं। आदमी जब पागल
जाता है, तो उसे तर्क-वितर्क की बातें कहां समझ में आती हैं ? रम
के साथ भी वही हुआ था। असल बात यही थी कि उसका दिम
ठिकाने नहीं था। वह बीवी और मां बनने के लिए सचमुच पागल
उठी थी। उसने बहुत दिनों तक दरिद्रता से संघर्ष किया था। उस
छुटकारा पाने के लिए उसने बहुत कुछ किया था। हम लोगों को धोर

देकर उसने रुपये ऐंठने की कोशिश की थी, ताकि वह भी अमीर हो सके। इसीलिए मुझसे ब्याह के बाद जब उसके पास पैसा आया, जब वह भी ढेर-ढेर गहने-कपड़ों की मालकिन बनी तब उसके मन में भी बीवी और मां बनने की साध जाग उठी।

जो चीजें पाकर औरत भर जाती है—सम्पूर्ण हो जाती है, उसने भी वही पाना चाहा। लेकिन···

अचानक तापस की बातों में व्याघात पड़ा। कहीं से ट्रंककाल आया था। तापस फोन पर बहुत सारी बातें करने में व्यस्त हो गया। टेलीफोन की बातचीत खत्म करके, उसकी निगाहें मेरी तरफ घूम गईं, "अब शायद तुमसे मुलाकात न हो, दोस्त, मैं आज रात के प्लेन से न्यूयार्क जा रहा हूं।"

"अचानक न्यूयार्क ?"

"हां, कहीं कुछ गड़बड़ हो गया है, मेरा जाना जरूरी है। लेकिन देख, तू यहां से जाना नहीं! मेरे ही मकान में रहना! जितने दिन मन हो, रुक जाना! तुझे कोई असुविधा नहीं होगी! मैं सारा इन्तजाम कर जाऊंगा···"

इसके बाद कोई खास बात नहीं हुई। तापस की समूची शाम तैयारियों में ही बीत गई। उसके लिए दफ्तर में भी ढेर सारे काम पड़े थे।

सारे काम-काज निबटाने के पहले देश छोड़कर जाना क्या उतनी आसान बात थी!

मुझे याद है, तापस के चले जाने के बाद मैं भी अधिक दिनों तक उसके मकान में नहीं रहा। दफ्तर का काम खत्म होने से पहले ही, मैं उसकी कोठी छोड़कर होटल में चला आया। मुझे उससे बहुत-से सवालों का उत्तर मांगना था। मैं उससे कुछ और बातें भी जानना चाहता था।

लेकिन अब कोई उपाय नहीं रह गया था। इन्सान के लिए बम्बई जाना क्या रोज़-रोज़ सम्भव है? रोज़मर्रा के पापों की सज़ा काटते हुए, इन्सान की ज़िन्दगी खत्म हो जाती है। इसके बावजूद अगर कभी किसी बहाने कहीं जाने का मौका हाथ लग जाता है, तो उसे ही हम लोग बंधी-बंधाई लीक पर चलनेवाली ज़िन्दगी की ऊपरी आमदनी मान लेते हैं। लेकिन यह ऊपरी आमदनी क्या हर दिन किसीको नसीब होती है?

अचानक एक दिन फिर मेरे लिए बिल्कुल अयाचित भाव से ऊपरी आमदनी का संयोग आ पहुंचा। हालांकि ऐसा मौका काफी दिनों बाद मिला था।

अपने दफ्तर की तरफ से जैसे ही मुझे साउथ इंडिया जाने का मौका हाथ लगा मैं उसे किसी भी शर्त पर छोड़ने को राज़ी नहीं हुआ। मन ही मन मैंने तय कर लिया कि इसी बहाने महाबलिपुरम् और चिंगलीपट भी घूम आऊंगा। तापस, रम्भा और नरसिंहम की उस लीला-भूमि के भी दर्शन कर आऊंगा।

जब हाथ का काम ज़रा हल्का हुआ तो मैं सीधे महाबलिपुरम जा पहुंचा। मैंने महाबलिपुरम का वह होटल भी देख डाला, जहां तापस पहली बार ठहरा था, जहां रम्भा और नरसिंहम का झगड़ा हुआ था और जहां तापस के विली साहब ने उनके बीच मध्यस्थता की थी।

वहां से लौटते हुए बस के एक यात्री ने मेरी तरफ गौर से देखते हुए अचानक सवाल किया, "सर, आपने मुझे पहचाना!"

मेरी निगाहें काफी देर तक उसके चेहरे पर अटकीं रहीं, लेकिन मुझे कुछ भी याद नहीं आया। मैंने पूछ ही लिया, "आप···कौन हैं, ज़रा बताइएगा!"

"मैं···पटवर्धन हूं, साहब! आपसे नागपुर में मुलाकात हुई थी। आप भूल गए?"

मुझे उसी पल सारी बातें याद हो आईं।

मैंने पूछा, "तापस कहां है?"

"साहब तो यू० के० में हैं।"

"यू० के०···? तुम्हारे साहब क्या जिन्दगी भर यूं ही घूमते रहेंगे ?"

"हमारे साहब एक जगह कभी टिककर नहीं बैठ सकते। काफी चंचल और अस्थिर किस्म के इन्सान हैं !"

"लेकिन आप इधर कहां ?" मैंने पूछा।

"चिंगलीपट !"

चिंगलीपट का नाम सुनते ही मैं सब समझ गया।

"वहां क्या करने जा रहे हैं ?"

"वही—आपको तो बताया ही था। साल में एक बार मुझे यहां रुपये देने आना पड़ता है, सो उसी काम से आया हूं। यहां मन्दिर के प्रधान पुजारी के हाथों में रुपये सौंपकर मुझे आज की ही ट्रेन से नागपुर लौटना है ! ···आप भी चलिए न, सर !"

खैर, मुझसे अनुरोध करना फिजूल था। मैं तो चलने के लिए तैयार ही खड़ा था।

मैंने छूटते ही कहा, "हां, हां, चलिए···"

चिंगलीपट में मेरा वह पहला और अन्तिम प्रवास था। मन्दिर तक पहुंचने के लिए शहर से बाहर करीब दस मील अन्दर तक साईकिल-रिक्शे में जाना पड़ता था। लगभग दस बीघे के अहाते में एक आश्रम बना हुआ था। आंगन में मन्दिर बना हुआ था।

मैंने पूछा, "यह किसका मन्दिर है ?"

"वेंकटेश्वर जी का !"

विराट आश्रम। विराट आयोजन ! आश्रम के अहाते में फैली हुई छोटी-छोटी कुटियां ! आश्रमवासियों के रहने की जगह ! उनके बीच-बीच में नारियल के छोटे-छोटे अनगिनत पेड़ ! उन्हीं की वजह से समूचे अहाते में काफी घनी छांह !

हम लोग घूम-फिर कर पूरी जगह का मुआयना करते हुए आगे बढ़ गए।

पटवर्धन ने कहा, "चलिए, अब मन्दिर में चला जाए !"

वह मन्दिर खास बड़ा तो नहीं था लेकिन अद्भुत सुन्दर था। काले

गमरमर से निर्मित ! दक्षिण भारत की शैली पर बना हुआ चतुष्कोण मन्दिर !

मन्दिर के भीतर कदम रखते ही प्रधान पुजारी से भेंट हो गई। पटवर्धन ने उसे प्रणाम करके रुपये का बंडल थमा दिया। उस बंडल में कितने हज़ार रुपये थे, यह मेरे अन्दाज़ के बाहर की बात थी। सारा कुछ तापस का ही दिया हुआ था ! सब कुछ ! मुझे लगा इस आश्रम और प्रतिष्ठान के मूल में भी तापस ही है ! सब कुछ चुराई हुई मूर्तियों के रुपयों पर आश्रित !

अचानक मेरी निगाह किसी और जगह जाकर अटक गई। वेंकटेश्वर के चरणों में एक नारी-मूर्ति ! सफेद संगमरमर में तराशी हुई आदमकद मूर्ति !

मैंने जानना चाहा—यह किसकी मूर्ति है ?

प्रधान पुजारी ने जवाब दिया, "यह भगवान वेंकटेश्वर की अनन्य भक्त शिष्या रम्भाबाई की प्रतिमा है।"

खैर, मैंने भी ऐसा ही कुछ अनुमान लगाया था।

मुझे तापस की तरफ से अपनी करतूतों के लिए शायद ऐसे ही किसी प्रायश्चित की उम्मीद थी।

लेकिन मुझे उसके प्रायश्चित का यह स्वरूप बेहद स्थूल जान पड़ा मैं लौटने की सोच रहा था। पटवर्धन भी मेरे साथ-साथ ही बाहर निक[...] आया। उसका भी यहां काम खत्म हो चुका था।

पटवर्धन ने ही बात छेड़ी, "देखिए, सर, हमारे साहब मन्दिर, आश्[...] धर्म—इन सबकी चर्चा तक बर्दाश्त नहीं कर पाते, लेकिन इस म[...] के पीछे लाखों-लाख रुपये क्यों लुटा रहे हैं, समझ में नहीं आता ! [...]

पटवर्धन की बात का उत्तर देने के बजाय मैं उससे एक और [...] कर बैठा। अनजाने में ही मेरे मन में एक अजब-सा सवाल जा[...] था। मैंने पूछा, "वे कौन थे ?"

पटवर्धन को जैसे समझ नहीं आया। उसने पलटकर पूछा[...] किसकी बात पूछ रहे हैं, सर ?"

"अरे, वही, जिसे आप मन्दिर का प्रधान पुजारी बता र[...]

जिसके हाथ में आपने रुपये थमाए थे ?"

"वे ? वे ही तो यहां के सर्वेसर्वा हैं ! जब यह मन्दिर बन रहा था, वे उसी समय से यहा हैं। आपने रम्भाबाई की मूर्ति देखी थी न, सुना है, प्रधान पुजारी जी से उनकी जान-पहचान थी।"

"लेकिन ये रम्भाबाई कौन है ?"

"यह मैं नहीं जानता सर ! उन्हे यहां के किसी व्यक्ति ने नहीं देखा। सुना है, प्रधान पुजारी जी ने ही आखिरी वक्त में उनकी सेवा की थी और रम्भाबाई की मृत्यु के बाद वे खुद भी संन्यासी हो गए।"

"अच्छा, उनका असली नाम क्या है ?"

"मतलब ?"

"मतलब संन्यासी होने के पहले उनका क्या नाम था ? मैं उनके पूर्वाश्रम का नाम जानना चाहता हूं।"

"दरअसल मुझे यहां के बारे में कुछ भी नहीं मालूम, सर ! मुझे तो सिर्फ सुनी-सुनाई बातें ही ज्ञात हैं। यहा के लोगों की जुबानी ही मुझे पता लगा कि प्रधान पुजारी जी ही वेंकटेश्वर जी के मन्दिर के प्रतिष्ठाता हैं। इस मन्दिर के निर्माण में जितना रुपया खर्च हुआ, सब हमारे साहब ने दिया है।"

"लेकिन आपने मुझे उनका नाम नहीं बताया !"

"सुना है उनका असली नाम नरसिंहम था···"

आज इतने दिनों बाद तापस के बारे में लिखते हुए बार-बार एक ही ख्याल आ रहा है ! सोचता हूं, तापस और उसकी इस अस्वाभाविक जिन्दगी के बारे में आखिर कौन-सी राय कायम की जाए ? इतनी लम्बी-चौड़ी दुनिया में जैसे हजारों तरह के लोग हैं, लेकिन सब इन्सान तो एक जैसे नहीं होते ! कोई भला है, कोई बुरा है ! कोई न भला है, न बुरा, बस बीच-बीच का है। इन तमाम लोगों से ही संसार बना है। वैसे ही सरस्वती की वीणा में भी अनगिनत तार हैं—कोई तांबे का, कोई लोहे का, कोई किसी अन्य धातु का ! ऐसा कोई नियम नहीं है कि दुनिया

के तमाम लोगों को महान वनना ही होगा। जैसे वीणा के हर तार से उदात्त स्वर ही फूटें, यह जरूरी नहीं है—किसी तार से मद्धिम स्वर निकलेगा, किसीसे गम्भीर ? यानी सुर चाहे जैसा भी हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता; लेकिन शर्त यही है कि हर स्वर अपने ध्रुव-लक्ष्य की ओर ही अभिमुख हो। अतः तापस भी महान नहीं वन पाया तो क्या हुआ ? दुनिया का हर इन्सान महान ही होता है, यह दावा कोई नहीं कर सकता। लेकिन महानता के प्रति मन में श्रद्धा-भक्ति व्यक्त करना भी तो एक तरह की महानता है ! तापस में क्या वह महानता नहीं है ? कौन जाने ! वर्ना वेंकटेश्वर के मन्दिर-निर्माण के लिए लाखों-लाख रुपया दान क्यों देता ? उसके वाद हर साल इतना-इतना रुपया क्यों भेजता ? इसमें आखिर उसका कौन-सा स्वार्थ है ? अच्छा, नरसिंहम की पवित्र एकनिष्ठा में क्या उसे किसी महानतर के दर्शन हुए थे ?

पटवर्धन की तरह मैं भी आज तक इसका उत्तर नहीं खोज पाया। मैंने सोच लिया है, तापस से अगर फिर कभी मुलाकात हुई, तो उससे यह सवाल जरूर करूंगा। उससे पूछूंगा कि इतना-इतना रुपया खर्च करके आखिर वह किसकी लज्जा-हरण करना चाहता है ?—रम्भा की ? या नरसिंहम की ? या स्वयं अपनी ?

●●●